महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

वर्ष : ६० **अंक** : १२

दयानन्दाब्द: १९४

विक्रम संवत्: ज्येष्ठ शुक्ल २०७५

कलि संवत्: ५११९

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११९

सम्पादक

डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु.
त्रिवार्षिक-५८० रु.
आजीवन (१५ वर्ष)-२००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

जून द्वितीय २०१८

अनुक्रम

०१. दर्शन ही क्यों?	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-८	डॉ. धर्मवीर	०६
०३. **शास्त्रार्थ** (वृक्षों में 'अभिमानी जीव' है या नहीं) **शास्त्रार्थकर्त्ता** पं. गणपति शर्मा एवं स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती		११
०४. शङ्का समाधान- २७	डॉ. वेदपाल	३५
०५. वैदिक पुस्तकालय के नये संस्करण		३८
०६. संस्था-समाचार		३९
०७. आर्यजगत् के समाचार		४२

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com
उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com → Daily Pravachan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

दर्शन ही क्यों?

पुरातन और आधुनिक संदर्भों में 'दर्शन' एक व्यापक अर्थ वाला शब्द है। विभिन्न विषयों की तत्त्वमीमांसा या पद्धति बताने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। छह शास्त्रों को भी दर्शन कहा जाता है। **दृश दर्शने** धातु से निष्पन्न यह शब्द सामान्यत: देखने या साक्षात्कार के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। वैदिक संदर्भ में इसका अर्थ विशिष्ट महत्त्व रखता है। पाश्चात्य दार्शनिक और इनके अनुयायी रहे पौर्वात्य दार्शनिकों की मान्यता है कि वेदों में दर्शन का तत्त्व नहीं है अपितु परवर्ती उपनिषदों में भारतीय दर्शन का विकास हुआ। आधुनिक काल में शैक्षिक जगत् में भी यही स्वीकार किया गया कि वेद केवल कर्मकाण्ड के ग्रन्थ हैं और उपनिषदों तथा षड्दर्शनों में ही दर्शन का तत्त्व विकसित हुआ। यह एक परिकल्पना (Hypothesis) है, जिसके आधार पर पुरातन भारतीय चिन्तन को हेय दृष्टि से देखकर वेदों के अनौचित्य को सिद्ध करना अभीष्ट था। आर्यसमाज में समकालीन संदर्भों में भी अनेकत्र यह माना जाता है कि दर्शन पढ़ना विशेषत: योगदर्शन पढ़ना ही जीवन का परम ध्येय है, वैदिक सिद्धान्त को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है, न उसे जानने की आवश्यकता है, न वेदांग और न ही ऐतिह्य ग्रन्थों को पढ़ने का कोई औचित्य ही है।

आश्चर्य का विषय है कि जबकि **वेद** शब्द का अर्थ ही ज्ञान है और इसीलिए **दर्शन** शब्द का अभिप्राय **'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्'** जिसके द्वारा तत्त्व का यथार्थ रूप देखा जाए वह दर्शन है; ऐसा माना जाता है। तब भी **वेद** की उपेक्षा क्यों? पाश्चात्य चिन्तन में यह शब्द फिलॉस (Philos) और सोफिया (Sophia) से बना है, जिसमें फिलॉस का अभिप्राय है **प्रेम** और सोफिया का अर्थ है **ज्ञान** या **विद्या** अर्थात् Wisdom, जिसका अभिप्राय है ज्ञान के प्रति प्रेम या अनुराग। यह ज्ञान शाश्वत ज्ञान है, जगत् के मूल कारण को समझने का ज्ञान है, आत्मा का ज्ञान है और परम तत्त्व का ज्ञान है। इसे ही पाश्चात्य दर्शन में तत्त्वमीमांसा तथा ज्ञानमीमांसा कहा गया है। जहाँ पश्चिमी दार्शनिक जिज्ञासा से दर्शन को उत्पन्न मानते हैं वहीं भारतीय दर्शन की उत्पत्ति वेद से है, वेद ही सभी दर्शन-पद्धतियों का मूल है और यह भी कि भारत की सभी ज्ञानधाराओं के विकास का मूल वेद ही है।

यदि केवल दर्शन ही पढ़ना अभीष्ट होता तो महर्षि दयानन्द **सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** तथा अन्यान्य ग्रन्थों में वेद के पढ़ने का प्रावधान न करते। वे केवल ज्ञान-प्राप्ति में दर्शन ही को स्वीकार करते, लेकिन ऐसा देखा नहीं गया है। **उन्होंने भाषा (व्याकरण) के उपरान्त अन्य वेदांगों एवं दर्शनों का पढ़ना वेद पढ़ने के लिए ही प्रमुख माना है, जिससे सभी सिद्धान्त निकलते हैं।** यदि साधक वेद का अध्ययन करता है, तो वेद में उपलब्ध विभिन्न सत्ताओं का विवेचन और उनकी व्याख्याएं हमें ब्राह्मण ग्रन्थों, और षड्दर्शनों, उपनिषदों में देखने को मिलती हैं। यदि वेद का साक्षात्कार नहीं होता तो उसी प्रकार स्थिति होती, जिस प्रकार कि आचार्य शंकर ने वेदान्त के अतिरिक्त सभी अन्य दर्शनों का खण्डन किया। सभी दर्शनों का प्रतिपाद्य आचार्य शंकर मोक्ष की प्राप्ति नहीं मानते या यह कहें कि केवल ब्रह्म होना ही जीवन का ध्येय है तो वेदान्त के अतिरिक्त पांचों दर्शनों में यह लक्ष्य उपलब्ध नहीं होता और यदि यह मान लिया जाए कि केवल छह दर्शन पढ़ने से वेदज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तो यह हास्यास्पद ही कहा जाएगा। ऋषियों द्वारा निर्दिष्ट पथ से भिन्न यह विचार भ्रमित करने के लिए ही है। महर्षि दयानन्द ने और स्वयं दर्शनकारों ने दर्शनों की परिणति वेद एवं वेदार्थ में ही मानी है।

मुझे अनेक साधक छात्र, आचार्य तथा आर्यजन मिलते हैं और वे कहते हैं कि हमें दर्शन पढ़ने की आवश्यकता है, वेद पढ़ने की आवश्यकता नहीं है, तो क्या यह वेद का उपहास करना नहीं है? और वेद को दर्शनों से भिन्न बताकर उनकी अनुपादेयता को निर्दिष्ट करना नहीं है? आर्यसमाज में वर्तमान में यह विचार जिस प्रकार फैलाया जा रहा है, वह आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द की दृष्टि से भिन्न है। इसीलिए आर्यसमाज के नियमों में यह कहा गया कि "**वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद**

का पढ़ना-पढ़ाना सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।'' महर्षि दयानन्द को फिर यहाँ वेद के स्थान पर कहना चाहिए था कि दर्शन ही सभी सत्य विद्याओं की पुस्तक है और दर्शनों को पढ़ना-पढ़ाना ही सब आर्यों का परम धर्म है। दार्शनिक पद्धति से अपरिचित होने वाले व्यक्ति वस्तुत: इस तथ्य की अनदेखी कर देते हैं कि दर्शन का सम्प्रत्यय ज्ञान की सभी शाखाओं के मूल में विद्यमान हैं। यूनानी दार्शनिक **अरस्तू** ने इसीलिए दर्शन को एक ऐसा विज्ञान माना है जो परम तत्त्व के यथार्थस्वरूप की जाँच करता है। जबकि **फिस्टे** नामक दार्शनिक ने दर्शन को ज्ञान का विज्ञान माना है। वस्तुत: वैदिक-दर्शन के वास्तविक स्वरूप को समझने वाला जानता है कि भारतीय ज्ञानतत्व के मूल बिन्दु को वेद के बिना भली प्रकार नहीं समझा जा सकता। मनुष्य जीवन के लिए जिस ज्ञान की आवश्यकता है वह सभी हमें वेदों में प्राप्त होता है। विश्व के सभी दार्शनिकों तथा विद्वानों तक ने वेद के महत्त्व को मानकर ऋग्वेद को सृष्टि का प्रारम्भिक ग्रन्थ माना है, तब फिर हम वेद को छोड़कर मात्र दर्शनों को पढ़कर ही अपने जीवन की सार्थकता समझ लेते हैं, वैदिक विचार-सरणि में इसे उचित नहीं कहा जा सकता।

वेद के अनुसार परमात्मा को जानना और प्राप्त करना ही दर्शन का चरम उद्देश्य है। वेद सर्वांग हैं, ज्ञान की सभी धाराएँ वेद में निहित हैं। **तर्कशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, मोक्षविचार, कर्मविचार, सृष्टिविचार, विज्ञानविचार, समाजविचार, अर्थविचार, शिक्षाविचार** इत्यादि कोई भी तत्त्व ऐसा नहीं है जो वेदों में उपलब्ध न हो। इसलिए हमें वेदों से पृथक् न जाकर वेदों के प्रारम्भिक सिद्धान्तों से धीरे-धीरे साधकों और जिज्ञासुओं को परिचित कराना चाहिए। पं. स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा नारायण स्वामी, स्वामी समर्पणानन्द, पं. युधिष्ठिर मीमांसक, आचार्य विश्वश्रवा, पं. भगवद्दत्त, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी इत्यादि अनेक आचार्यों ने वेद पढ़ने की उपेक्षा नहीं की है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि दर्शन नहीं पढ़ना चाहिए, लेकिन जब वेदतत्त्व का, वेदचक्षु का ही ज्ञान नहीं होगा तो दर्शनों का अभिप्राय बोधगम्य नहीं हो सकता। शाखाओं और पल्लवों के विकास की परिभाषा मूल को पढ़ने से ही समझी जा सकती है, इसीलिए हमें वेद-ज्ञान की ओर उन्मुख होना ही चाहिए।

महर्षि दयानन्द की स्पष्ट मान्यता है और प्राचीन ऋषियों तथा विचारकों की भी, कि **वेद** परिपूर्ण ज्ञान होने से सभी सत्य विद्याओं का मूल है। शेष सारा वैदिक वाङ्मय वेदज्ञान को समझने-समझाने में प्रवृत्त होता है। यही नहीं, इन ग्रन्थों में समाहित सारी ज्ञान-सामग्री का मूल भी वेद ही है, वेद में ही सम्पूर्ण ज्ञान प्रतिष्ठित है। वेदों के अंगों-उपांगों की संज्ञा बताती है कि वेद इस सम्पूर्ण साहित्य का आत्मा है। वास्तविक वेदार्थ को जानने के लिए ही दर्शन-रूप इन उपांगों का अध्ययन-अध्यापन किया जाता है। वेद के लक्ष्य एवं स्वरूप की वास्तविक स्थिति को समझे बिना दर्शनों के स्वरूप एवं मर्म को समझना असंभव है। सारे वैदिक दर्शनकार स्व-स्व दर्शन की उत्पत्ति वेद से मानते हैं और प्रकारान्तर से बताते हैं कि ये दर्शन वेदविद्या के ज्ञान में सहायक हैं। अत: परब्रह्म के नि:श्वास-भूत वेदज्ञान को लक्ष्य बनाए बिना दर्शनों को पढ़ना अंधों के द्वारा हाथी के स्वरूप को पहचानने के प्रयत्न जैसा है। अत: उचित है कि वेद के अंगों-उपांगों की अध्ययन-पद्धति को **वेद** से ही सम्बद्ध रखा जाए, क्योंकि ये सारे ग्रन्थ विषय को समझने की दृष्टि से परस्पर अभिन्न हैं। मनु महाराज कहते हैं-

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वय:।। - **दिनेश**

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित ऋषि मेले में आप सभी आमन्त्रित हैं।

१६, १७, १८ नवम्बर २०१८, **सम्पर्क**- ०१४५-२४६०१६४

मृत्यु सूक्त-८

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्य

परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां, यस्ते स्व इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि, मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्।।

वेद-ज्ञान की चर्चा में हमने मृत्यु सूक्त के प्रथम मन्त्र की चर्चा करते हुए देखा था कि हम मृत्यु को कह रहे हैं कि तुम्हारा रास्ता हमारी ओर नहीं है। '**परं मृत्यो अनुपरेहि पंथाम्**' तुम दूसरे रास्ते से जाओ जो देवयान से भिन्न है। वो देवयान से भिन्न रास्ता क्या है, अर्थात् मृत्यु से कुछ प्रभावित और कुछ अप्रभावित भी रहता है क्या? मृत्यु किसी के पास आती है और किसी के पास नहीं आती, ऐसा भी होता है क्या? यदि नहीं तो फिर यह कहने की क्या आवश्यकता है कि हे मृत्यु! तुम इधर मत आओ, उधर जाओ। ये जो कथन है, ये मृत्यु की अपेक्षा से नहीं है। ये कथन जिसकी मृत्यु हो रही है उसकी अपेक्षा से है। क्योंकि मृत्यु सब के पास मृत्यु के रूप में एक ही तरह से जाती है, किन्तु उसको प्राप्त होने वाला प्रतिक्रिया को अलग-अलग तरह से व्यक्त करता है। एक मरने को सहज मान रहा है, एक मरने को दुर्घटना समझ रहा है। एक मरना नहीं चाहता है और दूसरे को आपत्ति नहीं है। ये परिस्थिति मृत्यु की ओर से नहीं है, ये मरने वाले की ओर से है। मरने वाला उस मृत्यु को कैसे ले रहा है, इस कारण से है।

इसके लिए हमने यजुर्वेद के एक मन्त्र पर चर्चा की थी **वायुरनिलम् अमृतम्**, यह जीवात्मा तो मरता ही नहीं है। मरने और उत्पन्न होने की प्रक्रिया उसके आधे के साथ घटित होती है (अर्थात् शरीर।) इस शरीर में वो जीवात्मा रहता है। इसी कारण से वो जीवात्मा इसके साथ घटता-बढ़ता, बदलता रहता है। शरीर जन्म लेता है तो हम कहते हैं जीवात्मा ने जन्म लिया। शरीर बालक होता है तो हम जीवात्मा को बाल्यावस्था में समझते हैं। हम शरीर की युवावस्था के साथ जीवात्मा की युवावस्था समझते हैं। हम शरीर की मृत्यु के साथ जीवात्मा की मृत्यु समझते हैं किन्तु शास्त्र कहता है कि उसकी कोई मृत्यु नहीं होती, इसलिए उसका जन्म भी नहीं होता। उसमें जवानी, बुढ़ापा भी नहीं होता। परिवर्तन भी नहीं होता। यह हो रहा है तो किसके साथ हो रहा है? उसके लिए इस मन्त्र के दूसरे भाग में कहा गया-**भस्मान्तं शरीरं**।

संस्कृत के शब्दों में अद्भुत विज्ञान-ज्ञान छिपा रहता है। हर शब्द में उसका अर्थ बना रहता है। जैसे हम देखते हैं कि इस काया को हम शरीर कहते हैं। शरीर को शरीर क्यों कहते हैं? आचार्य यास्क कहते हैं-**शृणाति शमनति वा**। कहता है, इसके क्षीण होने या हिंसित होने, नष्ट होने से, इसे हम शरीर कहते हैं और यह शरीर जहाँ जाकर सो जाता है, जहाँ जाकर इसको लिटा देते हैं, हम उसको श्मशान कहते हैं। यास्क कहते हैं, श्मशान को श्मशान क्यों कहते हैं? कहता है **श्म** कहते हैं **शरीर** को और 'शान' कहते हैं लेटने को। जिसमें जाकर यह शरीर लेट जाता है, दोबारा नहीं उठने के लिए, वो स्थान **श्मशान** है।

इस शरीर के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए? जन्म के बाद तो इसका हम लालन-पालन करते हैं, इसका पोषण संरक्षण करते हैं, क्योंकि इसके अन्दर जो आत्मा है उसको सुरक्षित रखना है। लेकिन जिस क्षण, आत्मा इसको छोड़ देता है, तब इसका क्या हो? एक वस्तु है, प्राकृतिक रूप से नष्ट हो सकती है। आप इसको यदि कुछ भी नहीं करेंगे, तो भी यह नहीं रहेगा। लेकिन वो आपके लिए हितकर नहीं होगा। आपके लिए हितकर इसलिए नहीं होगा, क्योंकि इसके अन्दर जो परिवर्तन आएगा उससे प्रकृति के नियमों से इसके अन्दर सड़ान्ध पैदा होगी, दुर्गन्ध पैदा होगी और वो दुर्गन्ध वातावरण में जाएगी। वातावरण की दुर्गन्ध स्वास्थ्य को नष्ट करती है, बुद्धि को नष्ट करती है। इसलिए आप इसे मरा हुआ छोड़कर दूसरी जगह जा नहीं सकते। ये जहाँ मरा है वहाँ आप रहने के लिए मजबूर हैं, बाध्य हैं। ऐसी स्थिति में आपके पास क्या विकल्प है?

केवल एक विकल्प है कि जो वस्तु आपके लिए हानिकर है, आप उसको वहाँ से हटा दें।

इस शरीर को हटाने के आपके पास बहुत सारे विकल्प हैं और वो विकल्प समाज में देखने में भी आते हैं। यहाँ तो **भस्मान्तं शरीरम्** कहा है। लेकिन हम संसार में देखते हैं कि दो तरह का व्यवहार इस शरीर के साथ किया जाता है। एक तो यह कि इसको लोग जला देते हैं और दूसरा जो विशेष आग्रह करने वाले लोग हैं वो इसको जलाते नहीं हैं, इसको गाड़ देते हैं। ऐसा करने के पीछे एक वैचारिक कारण है, वो वैचारिक कारण यह है कि जो लोग अपने को हिन्दू या वैदिकधर्मी मानते हैं, उनके अनुसार आत्मा नित्य है और शरीर अनित्य है। जब आत्मा निकल गया, तो शरीर का कोई मूल्य नहीं रहता, तो उसको जैसे भी अच्छे से अच्छे तरीके से, जल्दी से जल्दी नष्ट किया जाए, उसको नष्ट कर देना चाहिए। जलने से जितना जल्दी नष्ट होता है, और किसी प्रक्रिया से इतनी जल्दी नष्ट नहीं होता है। इसलिए जो लोग इस सिद्धान्त को मानते हैं कि शरीर भिन्न है और आत्मा भिन्न है, वो लोग इस शरीर को व्यर्थ समझकर जला देते हैं। लेकिन कुछ ऐसा मानते हैं कि वो मरा तो है, लेकिन अभी उसका अन्तिम निर्णय नहीं हुआ। हमारे ईसाई और इस्लाम के लोग उसे कयामत का दिन समझते हैं अर्थात् एक दिन भगवान् बैठता है, उसके साथ पैगम्बर बैठता है, फिर जितनी आत्माएं हैं वो खड़ी हो जाती हैं और हरेक आत्मा को उसके सामने आना होता है। उसके गुण-दोषों को सुनाया जाता है, उसका निर्णय होता है। वास्तव में मृत्यु तो उस दिन होती है कि वो स्वर्ग में गया या नरक में गया। यह एक विचार है, एक मान्यता है, किसी की भी हो सकती है, लेकिन वेद इस मान्यता को स्वीकार नहीं करता। वेद कहता है **भस्मान्तम् शरीरम्**- यह शरीर तो भस्म होने के योग्य है।

कुछ लोग कहते हैं कि मृत शरीर को ऐसे ही खुले में डाल देना चाहिए जिससे पशु-पक्षी, जो मांसाहारी हैं वो खा लें और उनकी तृप्ति हो जाए। देखने में यह बुरा नहीं है। पहली दृष्टि में अच्छा लगता है, लेकिन इससे होने वाली जो हानि है, उसका हमने मूल्यांकन नहीं किया है कि वातावरण कितना प्रदूषित हो जाएगा और उससे कितने लोग रोगग्रस्त हो जायेंगे, मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे, इसलिए ऐसा करना उचित नहीं है। हमारे दूसरे लोग इसको गाड़ना चाहते हैं। गाड़ने के बाद भी नष्ट होने की एक अवधि है। यदि आप गाड़कर ये सोचें कि इसके बाद इस स्थान पर कभी भी दूसरा मुर्दा नहीं गड़ सकता तो आपको पूरी पृथ्वी भी थोड़ी पड़ जाएगी। आप बारी-बारी से गाड़ते चले जायेंगे तो पूरा संसार कब्रिस्तान बन जाएगा। इस तरह से न तो स्थान बचेगा और न स्थान का कोई उपयोग होगा। इस दृष्टि से भी यह मान्यता भी व्यर्थ है। जहाँ लोग वैज्ञानिक हैं वो समझते हैं, वो जानते हैं कि कितने दिन बाद यह शरीर नष्ट हो जाता है, उतने दिन बाद उस स्थान को दोबारा काम में ले लेते हैं। यदि सिद्धान्तत: यह स्वीकार कर लिया जाए कि नष्ट होने के बाद उस स्थान को काम में लिया जाए, तो फिर यह बात सबसे अच्छी है कि इसको जल्दी से जल्दी नष्ट कर दिया जाए और स्थान को काम में ले लिया जाए।

एक-एक मुर्दे को गाड़ने के लिए जितना स्थान चाहते हैं और जितने वर्षों तक चाहते हैं उस अनुपात में एक स्थान पर एक दिन में दो-चार-छ: मुर्दे आप जला सकते हैं अर्थात् शवों का अग्निदाह कर सकते हैं। नष्ट करना, दुर्गन्ध को दूर करना ये दो उद्देश्य हैं। तो अग्नि के जलाने से नष्ट तो हो जाता है पर दुर्गन्ध कैसे दूर हो? ये दुर्गन्ध दूर हो इसके लिए भी ऋषियों ने व्यवस्था की है। **भस्मान्तम् शरीरम्** तो कह दिया, कि शरीर को जला दो। लेकिन नष्ट होने के बाद भी हानिप्रद न हो इसके लिए क्या करें? इसके लिए ऋषियों ने इसे जलाने की प्रक्रिया का भी एक नामकरण किया है और उस नामकरण से आपको पता लग जाता है कि इस जलाने की प्रक्रिया से कौन सा दोष कैसे दूर होता है। इस जलाने की प्रक्रिया को हमने नाम दिया है 'अन्त्येष्टि' 'पितृमेध' 'अन्तिम संस्कार'। अब इसमें एक-एक शब्द आपके लिए उपयोगी है। आप कहते हैं ये संस्कार है- अन्तिम संस्कार है। मनुष्य के जन्म का पहला संस्कार गर्भाधान या निषेचन कहलाता है और इसका अस्तित्व, इसका चिह्न अन्त्येष्टि से मिटता है। इसके लिए हमारे यहाँ कहा गया है कि जीवन में जो पवित्रता है वो गर्भ से मृत्यु तक होनी चाहिए। **निषेकादि श्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्य उदितो विधि: अर्थात् जिसका जन्म भी मन्त्रों से हुआ है**

और जिसकी मृत्यु भी मन्त्रों के साथ हो, उस व्यक्ति का जीवन पवित्र जीवन है।

जीवन का अन्तिम क्षण भी कैसे पवित्र बनता है? इसके लिए एक शब्द है यहाँ 'संस्कार' अर्थात् जो चीज असंस्कृत है, अशुद्ध है, वो शुद्ध कैसे की जाती है? इसलिए इस शव को जलाने की प्रक्रिया को संस्कार कहा गया है। इतना ही नहीं, एक शब्द है-अन्त्येष्टि, इसको यदि आप तोड़ें तो निश्चित रूप से दो शब्द स्पष्ट दिखाई देंगे-अन्त और इष्टि। जो अन्तिम क्रिया है वो इष्टि है। इष्टि कहते हैं यज्ञ को। जैसे पूर्णिमा के दिन किये जाने वाला यज्ञ 'दर्शेष्टि', पक्ष में किया जाने वाला यज्ञ 'पक्षेष्टि', जब नया अन्न हमारे पास आता है तो 'नवसस्येष्टि'। जितने हम यज्ञ करते हैं, उतनी तरह की हम इष्टियाँ करते हैं। हमारे जीवन में हम बहुत तरह की इष्टियाँ करते हैं। यहाँ कहा गया है-अन्त्येष्टि अर्थात् इस शरीर के साथ किया जाने वाला जो अन्तिम यज्ञ है उसे हम अन्त्येष्टि कहते हैं। इसको यज्ञ के रूप में बदल देते हैं।

हमारे ऋषियों ने अद्‌भुत आविष्कार किया कि एक वैज्ञानिक चमत्कार किया, उन्होंने कहा कि इसको व्यर्थ जला करके वातावरण को दुर्गन्धित करने से क्या लाभ है, तो उन्होंने इस कार्य को भी इष्टि में बदल दिया। इसमें भी वेद मन्त्रों का उपयोग होता है और घी-सामग्री से आहुतियाँ डाली जाती हैं। शरीर के अनुपात से वो घी और सामग्री इतना अधिक होता है, होना चाहिए कि इससे उत्पन्न होने वाली दुर्गन्ध सुगन्ध में परिवर्तित हो जाए।

जब कोई दुर्गन्धित पदार्थ जलता है तो दुर्गन्ध का क्षेत्र और मात्रा बढ़ जाती है। अग्नि किसी भी वस्तु को जलाकर, उसके गुणों को हजारों-लाखों गुना बढ़ा देती है। जब शव जलता है, तो इसकी दुर्गन्ध के परमाणु भी वातावरण में उतनी ही बड़ी संख्या में फैल जाते हैं। उससे वातावरण में दुर्गन्ध फैलती है, रोग फैलते हैं। ऋषियों ने इसको कहा, इष्टि बनाओ, इस दुर्गन्ध को समाप्त करने के लिए इष्टि कैसे बनायेंगे? इसके लिए घी, सामग्री, चन्दन आदि का उपयोग करेंगे। जो सुगन्धित पदार्थ हैं, जो औषधीय पदार्थ हैं, जो विषनाशक पदार्थ हैं उनका उपयोग करेंगे।

उनका उपयोग करने से क्या होगा? अग्नि में इन पदार्थों के जलाने से, दुर्गन्ध के परमाणुओं को अग्नि नष्ट कर देगा और सुगन्ध के परमाणुओं को बड़ी संख्या में वातावरण में प्रकाशित कर देगा और उससे उत्पन्न होने वाला रोग और दुर्गन्ध समाप्त हो जाएगा। इस दृष्टि से ये जो अन्तिम क्रिया है, इसको भी संस्कार कहा है, इसको भी इष्टि कहा है, यज्ञ कहा है। अर्थात् जब हम किसी काम को यज्ञ बना देते हैं, तो वह उसका सबसे आदर्श रूप होता है। परोपकार युक्त, लाभदायक रूप होता है। इस दृष्टि से हमने आत्मा की अमरता को जानते हुए, आत्मा के पृथक् होने के बाद, इस शरीर के साथ जो व्यवहार उचित है, उस व्यवहार के रूप में इसका अन्तिम संस्कार किया, एक अन्तिम यज्ञ किया और इससे उत्पन्न होने वाले जो विषाणु थे, जो दुर्गन्ध थी, जो रोग के कारण थे, उनको इष्टि के कारण से समाप्त कर दिया।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

भूल-सुधार

परोपकारी के गत अंक जून प्रथम २०१८ के आवरण पृष्ठ ४३ पर पंडित रामप्रसाद बिस्मिल के बलिदान दिवस की तिथि गलती से ९ दिसम्बर छप गई है, जबकि सही दिनांक १९ दिसम्बर है। पाठकों को हुई असुविधा के लिये हमें खेद है। **-सम्पादक**

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एकमात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ– प्रवचन, वेद–पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***– आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति निःशुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***– अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्णरूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था निःशुल्क की जाती है। ***गोशाला***– गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का निःशुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***– वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा निःशुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***– इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोधकर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ निःशुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***– योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में निःशुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों में भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी–छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अतः आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अतिथि यज्ञ के होता

(१६ से ३१ मई २०१८ तक)

१. श्री लालचन्द यादव, श्रीगंगानगर २. श्री वृद्धिचन्द गुप्त, जयपुर ३. श्रीमती सूर्यकिरण (सीमा) जोधपुर ४. श्री मुरलीधर छापरवाल व श्रीमती भगवती देवी, अजमेर ५. श्री सुरेन्द्रमोहन विकल, लुधियाना ६. श्री रामवीर चुघ, पंचकुला ७. जस्टिस श्री प्रीतमपाल सिंह व श्रीमती माया चण्डीगढ़ ८. डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी', ऋषि उद्यान, अजमेर ९. श्री राजाराम त्यागी, हरिद्वार।

परोपकारिणी सभा, अजमेर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गौशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता

(१६ से ३१ मई २०१८ तक)

१. श्री आलोक माथुर, दिल्ली २. श्री माणिकचन्द जैन, जयपुर ३. श्रीमती निर्मला मेहरा, अजमेर ४. कु. प्रीति शर्मा, अजमेर ५. डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा व श्रीमती पुष्पा शर्मा ६. श्रीमती सुषमा आर्य, पानीपत ७. श्री रामरतन विजयवर्गीय, अजमेर ८. श्री अशोक सिंह महरवार, रतलाम ९. श्रीमती लता नारंग, नई दिल्ली १०. श्रीमती नीलम नारंग, नई दिल्ली ११. श्री कृष्णकान्त तनेजा, नई दिल्ली १२. श्री राजाराम त्यागी, हरिद्वार।

- परोपकारिणी सभा, अजमेर।

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को स्थान दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अत: सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं।** अत: लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हों। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें।** लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।** स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।

-संपादक

पं. गणपति शर्मा पुण्यतिथि (२७ जून) के अवसर पर विशेष

शास्त्रार्थ

वृक्षों में 'अभिमानी जीव' है या नहीं

वृक्षों में स्वाभिमानी जीव की उपस्थिति का विचार प्राचीनकाल से ही विवेचना का विषय रहा है। आर्यसमाज के दो मूर्धन्य विद्वानों का इस विषय में शास्त्रार्थ न केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से अपितु इतिहास की दृष्टि से भी संकलन के योग्य है। तहरीर और तकरीर के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए परोपकारी के अद्यतन अंक में इस शास्त्रार्थ को स्थान दिया गया है। शास्त्रार्थ से पहले शास्त्रार्थ के अध्यक्ष पं. पद्मसिंह शर्मा का सम्पादकीय लेख भी इसके साथ प्रकाशित कर रहे हैं। इस शास्त्रार्थ में आर्यजगत् के दो मूर्धन्य विद्वान् आमने-सामने थे। एक ओर उद्भट वाग्मी स्वामी दर्शनानन्द जी और दूसरी ओर प्रतिवादी भयंकर पं. गणपति शर्मा जी। पं. गणपति शर्मा को 'प्रतिवादी भयंकर' इसलिये कहा जाता था, क्योंकि उनके सामने आते ही प्रतिवादी भय से आक्रान्त हो जाया करते थे। दो दिग्गज आमने-सामने और अध्यक्ष हैं साहित्य शिरोमणि पं. पद्मसिंह शर्मा। वेद-शास्त्रों के सागर को अपनी ऊहा की मथनी से मथकर सिद्धान्तरूपी अमृत को प्राप्त करने के लिये दो शास्त्रमहारथी शास्त्रार्थ-समर में उतर गये। इस शास्त्रार्थ से निकले अमृत से आज का आर्यजगत् वंचित न रह जाये, इसी लालसा से परोपकारी के पाठकों को सादर समर्पित। - सम्पादक

स्थावर में जीव-विषयक विचार

श्री पं. गणपति शर्मा जी का यह अन्तिम और अपूर्व शास्त्रार्थ जिन महाशयों ने स्वयं सुना था, वे तो अब तक उस समय को याद करके सिर धुन रहे हैं और यह सोचकर कि अब ऐसा अवसर फिर इस जन्म में नहीं मिलेगा, अपने को धन्य समझ रहे हैं कि सौभाग्य से ही यह सुयोग हमें प्राप्त हो गया, जबकि आर्यसमाज के दो अप्रतिम-तार्किक, निरुपम-वक्ता, अद्वितीय-शास्त्रार्थकर्त्ता, अलौकिक-प्रतिभाशाली और अपने विषय के अपूर्व-विद्वान् तथा प्रतिवादि-भयंकर वाग्भट उपदेशक प्रवरों के संवाद-समर देखने और श्रवणसुधावर्षी वाग्विलास सुनने का अलभ्य लाभ मिल गया।

आहा! सचमुच ही वह कैसा विचित्र समय और पवित्र अवसर था। महाविद्यालय की सुरम्य भूमि के समीप विशाल बाग में कुदरती शामियाने के नीचे हजारों मनुष्यों का समाज जुटा है, एक ओर पीतवस्त्रधारी ब्रह्मचारी समूह पंक्ति बाँधे शान्तभाव से, पर उत्कर्ण हुआ, अपने आसन पर आसीन है, दूसरी ओर गैरिक रागरञ्जित-वेष-विभूषित, पर वैराग सम्पन्न अनेक सम्प्रदायों के साधु-महात्माजन-जिन जीवन्मुक्तायमानों को विवादसमर-दिदृक्षा और शास्त्रार्थ-शुश्रूषा खींच लाई है, आसन मारे विराजमान हैं। शेष श्रोतृमण्डल फर्श पर परा बांधे डटा हुआ है, कोई नोट लेने के लिये चाकू निकाले पेन्सिल गढ़ रहा है, कोई कागज के दस्ते सम्भाल रहा है, कोई पॉकेट -बुक के पन्ने पलट रहा है, कोई किसी से कागज-पैन्सिल माँग रहा है, कोई बार-बार घड़ी निकालकर देख रहा है। कोई वक्त पूछ रहा है। शास्त्रार्थ शुरू होने में अभी कुछ देर है, पर श्रोता अभी से उतावले-बेसब्रे हो रहे हैं, उन्हें एक-एक मिनट भारी हो रहा है, बैठे-बैठे गर्दन उठा-उठाकर देख रहे हैं कि पण्डित जी और स्वामी जी आते तो नहीं।

निदान जिस घड़ी का इन्तजार था वह आई और सुनने वालों की दिली कशिश, इन्तजार के बढ़े हुए तार में खींचकर वाग्भट-वीरों की जुगल जोड़ी को सभामण्डल में ले ही आई।

ठीक निर्दिष्ट समय पर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ और जिस प्रकार हुआ, वह आगे देखिये, परन्तु प्रिय पाठक! इन शब्दों में वह अलौकिक आनन्द कहाँ है जो उस समय वक्ताओं के धाराप्रवाह मधुर भाषणों से टपक रहा था। यह समझिए कि सुधारस-निष्पन्दी, भाषण-नद, बड़े प्रबल वेग से बह रहा था, जिसमें गोते खाते हुए श्रोतृजन भी साथ बहे जा रहे थे। कई महाशय जो उस समृद्ध वेग नद को कागज पेन्सिल के छोटे-छोटे पात्रों में भरना चाहते थे,

देखते रह गये, क्योंकि दरिया को कूजे में बन्द करना, हर एक का काम नहीं है।

हमारे मित्र पण्डित रलारामजी 'ब्रह्म' की लेखन-पटुता और आशु-ग्राहिता प्रशंसनीय है कि उन्होंने उस प्रबल प्रवाह में से इन ढले हुए मोतियों को रोलकर इकट्ठा कर लिया और उनसे यह सुन्दर कण्ठा बनाकर प्रस्तुत कर दिया, जो प्रिय पाठकों के कमनीय-कण्ठ में सादर समर्पित है।

इस शास्त्रार्थ-मौक्तिकमाला-निर्माण का सारा श्रेय पण्डित रलारामजी को ही है, इसके लिये पाठकों को उनका ही कृतज्ञ होना चाहिए।

'भारतोदय' अपने पण्डित जी की इस अन्तिम यादगार को सुरक्षित दशा में सर्वसाधारण के सन्मुख रखकर बड़ा हर्ष अनुभव कर रहा है।

शास्त्रार्थ पाण्डुलिपि नोटों के आधार पर, पण्डितजी के सामने ही प्रस्तुत हो चुकी थी। जब अन्तिम बार वह पंजाब जा रहे थे, निवेदन किया था कि महाराज! इसे सुनकर तसदीक कर दीजिए, कुछ भाग सुना और कहा कि अबकी बार आकर सब सुनेंगे, पर अफसोस ऐसे गये कि अब तक न लौटे।

विचार था कि वादी-प्रतिवादी, दोनों महोदयों को एक बार सुनाकर 'शास्त्रार्थ' प्रकाशित किया जाय, किन्तु दु:ख है कि दुर्दैव ने यह इरादा पूरा न होने दिया। ईश्वर की कृपा है कि 'प्रतिवादी' अभी मौजूद हैं, पर हाय 'वादी' को कहाँ से लायें? अब तो यह कहने का मौका भी नहीं रहा-

लोग कुछ पूछने को आये हैं, अहले-मय्यत जनाज़ा ठहरायें।

ओह! संसार भी कैसा संसरणशाली और परिवर्तनशील है। कुछ ठिकाना है। यारो, कल की बात है कि हम तुम सब अपूर्व शास्त्रार्थ-नद के प्रवाह में गोते लगा रहे थे, वाद-प्रतिवाद की जबरदस्त लहरें, कभी इस किनारे और कभी उस किनारे उठाकर पटक रही थीं, किसी एक तट पर जमकर बैठना थोड़ी देर के लिये भी मुश्किल था, पर जिस ओर जाते, अपूर्व आनन्द पाते थे और यही चाहते थे कि इस प्रकार हर्ष-पयोधि में हिलोरे लेते रहें।

आहा, वह समय अब तक आँखों में फिर रहा है, वक्ताओं की वह स्निग्ध-गम्भीर ध्वनि कानों में गूँज रही है, वह दिव्य-दृश्य हृदय पर अबलों अंकित हैं, जिसे स्मृति की आँखें अच्छी तरह देख रही हैं, पर देखो तो कुछ भी नहीं।

ख्वाब था, जो कुछ कि देखा, जो सुना अफसाना था।

प्रत्यक्ष, परोक्ष और वर्तमान, अतीत हो गया, साक्षात् अनुभव का विषय स्मृतिशेष रह गया, जिसे आँखों से देख और कानों से सुन रहे थे, वह सिर्फ सोचने और याद करने के लायक रह गया। आह ऐसा समय क्या कभी इस जन्म में फिर देखने को मिलेगा? उस शान्त पावनमूर्ति के फिर भी दर्शन हो सकेंगे? इन कानों से वे विचित्र बातें फिर सुन सकेंगे? किसी ने सच कहा है-

मनुष्य अपने चित्तपट पर नाना भाव और अनेक विचाररूपी रंगों से मनोरथ-चित्र बनाकर तैयार करता है और विधि एक नादान बच्चे की तरह हाथ फेरकर उसे मेट देता है।

मेरे मन कुछ और है, कर्त्ता के मन और।

आगामी वर्ष के लिये जिन-जिन महोदयों के साथ, जिस-जिस विषय पर, शास्त्रार्थ और संवाद करने का प्रोग्राम पण्डित जी बना रहे थे, वह यों ही रह गया। सुनने वालों के दिल की दिल ही में रह गई, अफसोस!

यह आरज़ू थी, तुझे गुल के रू-बरू करते,
हम और बुलबुल बेताब गुफ्तगू करते।

होने को अब भी सब कुछ होगा, उत्सव होगा, व्याख्यान होंगे और शास्त्रार्थ भी होगा, सभा जुटेगी, श्रोता आवेंगे, कहने वाले कहेंगे, सुनने वाले सुनेंगे, वक्ता की वाणी से निकले हुए शब्द श्रोताओं के इस कान से उसमें होकर निकल जायेंगे, 'पल्ला-झाड़' कथा सुनकर उठ खड़े होंगे-

कहने सुनने की गर्म-बाज़ारी है,
मुश्किल है मगर असर पराये दिल में।
ऐसा सुनिये कि कहने वाला उभरे,
ऐसी कहिये कि बैठ जाए दिल में।।

दिल में बैठने वाली बात कहने वाला मिलना मुश्किल है। अनेक शास्त्रार्थ देखे, बहुतेरी वक्तृताएँ सुनीं, पर ऐसा प्रतिभाशाली ऊहवान् और मधुरभाषी, शास्त्रीय विषयों का सुवक्ता, विचित्र व्याख्याता हमारे देखने में तो आया नहीं, आगे आशा भी नहीं है-

मानो न अलीक भूमिकम्प ही से काँपता है,

विद्युदादि-वेगों से पहाड़ हिलता नहीं।
भानु का प्रकाश भव्यकारण विकास का है,
तारों की चमक पाय-'पद्म' खिलता नहीं।
शंकर रबीली कड़ी रेती रेत डालती है,
क्षुद्र छुरी छेनियों से हीरा छिलता नहीं।
हाय गणपति की अनूठी वक्तृता के बिना,
अन्य उपदेश सुने स्वाद मिलता नहीं।

- पं. पद्मसिंह शर्मा (सम्पादक-भारतोदय)

शास्त्रार्थ

विषय : स्थावर में जीव विषयक निर्णय

दिनांकः ८ अप्रैल सन् १९१२ ई. (सुबह १० बजे)

स्थानः ज्वालापुर (महाविद्यालय) हरिद्वार (उ.प्र.)

वृक्षों में जीव मानने वाले- **प्रतिवादी भयंकर पं. गणपति शर्मा जी 'तार्किक शिरोमणि'**

वृक्षों में जीव न मानने वाले- **वाग्मिप्रवर स्वामी दर्शनानन्द जी** (जो पहले श्री पं. कृपाराम जी शर्मा 'जगरानवी' के नाम से प्रसिद्ध थे)

शास्त्रार्थ के अध्यक्ष- **साहित्य महारथी पं. पद्मसिंह जी शर्मा** (सम्पादक- भारतोदय)

शास्त्रार्थ लेखकः **पं. रलाराम जी**

श्री पंडित गणपति शर्मा जी

ओ३म् तत्सद् ब्रह्मणे नमः

अब आज, इस बात पर विचार होगा कि वृक्षों में 'अभिमानी जीव' है या नहीं, मेरा मत यह है कि वृक्षों में 'अभिमानी जीव' है। सबसे पहले मैं इस विषय में वेद का प्रमाण देता हूँ क्योंकि हम लोग आस्तिक हैं और आस्तिकों के लिए 'वेद' सबसे बढ़कर प्रमाण है। अतः वेद का प्रमाण पेश करता हूँ। 'अथर्ववेद' के प्रथम कांड के अनुवाक ६, सूक्त ३२, मन्त्र १ में देखो-

इदं जनासो विदथ महद्ब्रह्म वदिष्यति।
न तत्पृथिव्यां नो दिवि 'येन प्राणन्ति वीरुधः।

इस मन्त्र में ''**येन प्राणन्ति वीरुधः**'' का अर्थ है कि ''जिससे (वीरुधः) लताएं-बेलें जीव को धारण करती हैं'' इससे यह पाया जाता है कि वृक्षों में 'जीव' है, क्योंकि लताएं वृक्ष-जात्यन्तर्गत हैं।'' **दूसरा प्रमाण-**

''**जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम्**''

(अथर्ववेद-कांड ८ अनु. ४, सूक्त ७, मन्त्र ६)

यहाँ ''**जीवन्तीमोषधीमहम्**'' ''जीती हुई औषधि को'' इस प्रकार लिखा है, औषधि का 'जीना' बिना जीव के नहीं हो सकता। अब इन दो वेद मन्त्रों के प्रमाण के पश्चात् '**छान्दोग्योपनिषत्**' का प्रमाण पेश करता हूँ-

''**अस्य सोम्य! महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेद्यो मध्येऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेद्योऽग्रेऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेत् स एष जीवेनात्मनानुप्रभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति।।१।। अस्य यदेकां शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति तृतीयां जहात्यथ सा शुष्यति सर्व जहाति सर्वः शुष्यति एवमेव खलु सोम्य! विद्धीति होवाच।। २।। जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियत इति...।।**''

इसका अर्थ- हे सोम्य! इस बड़े भारी वृक्ष को यदि मूल से काटें तो जीता हुआ स्रवण करता है। (रस-दूध आदि के टपकने से तात्पर्य है), यदि मध्य भाग को काटा जाय तो जीता हुआ स्रवण (टपकता है) करता है। यदि अग्रभाग (टहनी आदि) में काटा जाय तो जीता हुआ स्रवण करता है। इस रस आदि के टपकने से यह प्रतीत होता है कि यह वृक्ष जीवात्मा से (अनुप्रभूतः) व्याप्त या अधिष्ठित हुआ (पेपीयमानः) जल को तथा पृथिवी के रसों को अत्यर्थ (बहुत) पीता हुआ लहलहाता रहता है और जब 'जीव' इस (वृक्ष) की एक शाखा को छोड़ता है तब वह सूख जाती है, जब दूसरी को छोड़ता है तो वह भी सूख जाती है, जब तीसरी को छोड़ता है तो तीसरी सूख जाती है, यदि सारे पेड़ को छोड़ जाता है तो सारा पेड़ सूख जाता है। हे सोम्य! इस प्रकार (जैसे कि, पेड़ जीव से युक्त होकर रस आदि को भूमि में से जड़ों द्वारा पी-पीकर हरा-भरा रहता है और जीव के अलग हो जाने से सूख जाता है) यह (हमारा) शरीर, जीव से रहित हुआ निश्चयपूर्वक मर जाता है, पर जीव नहीं मरता...इत्यादि।। इससे यह निश्चय आया कि 'वृक्षों में जीव है'। यह तीन श्रुति के प्रमाण हुए,

अब स्मृति का प्रमाण देता हूँ, देखो! '**मनुस्मृति**' अध्याय एक, श्लोक ४१ से ५० तक-

एवमेतैरिदं सर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः।
यथाकर्म्म तपोयोगात्सृष्टं स्थावरजंगमम्।।४१।।

एवमेतैरिति-एवमित्युक्तप्रकारेण एतैर्मरीच्यादिभिरिदं सर्वं स्थावरजंगमम् सृष्टम्। यथाकर्म यस्य जन्तोर्यादृशं कर्म तदनुरूपम् इत्यादि...

भावार्थ- 'इस प्रकार मरीचि आदि ने सब 'स्थावर' (वृक्ष लता आदि 'जंगम्' (पशु पक्षी आदि) संसार बनाया, यह नहीं कि यों ही अंट-संट बनाया, किन्तु (यथाकर्म) जिस जन्तु (जीव) का जैसा कर्म था, कर्म के अनुसार उसको तत्तद्योनि में पैदा किया...इत्यादि)।'

इससे यही सिद्ध होता है कि जन्तु अपने कर्मों के अनुसार जंगम और स्थावर रूप सभी योनियों में जन्म लेता है, रहता है तथा मरता है।

येषां त यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम्।
तत्तथा वोऽभिधास्यामि क्रमयोगं च जन्मनि।।४२।।

इस श्लोक में यह प्रतिज्ञा करके कि प्राणी किस-किस योनि में किस-किस कर्म के अनुसार कैसा जन्म लेता है, वह आगे कहता हूँ। मनु महाराज कहते हैं-

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः।
रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः।।४३।।
अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः।
यानि चैवंप्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च।।४४।।
स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम्।
ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम्।।४५।।

ऊपर लिखे इन-तीनों श्लोकों में 'जरायुज', अण्डज और स्वेदजों की उत्पत्ति बताकर -

उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः।
ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः।।४६।।
अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः। पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः।।४७।।
गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः।
बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्ल्य एव च।।४८।।

इन तीनों श्लोकों में नाना प्रकार के वृक्षों, बेलों तथा वनस्पतियों की उत्पत्ति का वर्णन किया है अर्थात् इन योनियों में भी गुण कर्मानुसार जीव जन्म लेता है, तदनन्तर यह शंका उत्पन्न होने पर कि ''यदि जीव इनमें जन्म लेता है तो चेतनता की प्रतीति हमें क्यों नहीं होती''? मनु महाराज उत्तर देते हैं-

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना।
अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः।।४९।।

इसका अर्थ श्रीमत्कुल्लूक भट्ट करते हैं कि- 'ये वृक्ष लता आदि तमोगुण से व्याप्त और सुख-दुःख से युक्त होकर 'अन्तःसंज्ञ' अर्थात् अन्तश्चैतन्य होते हैं और यह तमोगुण उनके अधर्म कर्मों (धर्म-विरुद्ध कर्मों) से उत्पन्न होता है और नाना दुःखरूप फलों का देने वाला होता है। यद्यपि सब शरीरधारी अन्तश्चैतन्य ही होते हैं अर्थात् शरीर के अन्दर ही ज्ञान का अनुभव करते हैं तो भी वृक्ष आदि को हमारे समान बाहर की ओर व्यापार आदि काम न करने से 'अन्तःसंज्ञ' कहा जाता है। यद्यपि '**वृक्षाभिमानी जीव**' भी 'सत्' 'रज' 'तमः' इन तीनों गुणों से युक्त होता है तथापि तमोगुण की अधिकता के कारण तमोगुण से व्याप्त माना जाता है, इसीलिए सुख और दुःख दोनों को ही अनुभव करता है, क्योंकि मेघों से बरसे हुए जल के स्पर्श से (वृक्षों को) सुख भी अवश्य होता है (ऐसा सभी को प्रतीत होता है)। इसी प्रकार'-

एतदन्तास्तु गतयो ब्रह्माद्याः समुदाहृताः।
घोरेऽस्मिन् भूतसंसारे नित्यं सततयायिनि।।५०।।

अर्थ-''ब्रह्मा से लेकर स्थावर (वृक्ष आदि) पर्यन्त यह सब जीव की उत्पत्ति के स्थान हैं इत्यादि''। इस प्रकरण से यह बात सुस्पष्ट है कि मनु महाराज भी 'वृक्ष में जीव' का होना मानते हैं, तथा यह श्रुति के अनुकूल होने से मान्य है।

इस प्रकार दो 'श्रुति' के, एक 'छान्दोग्योपनिषद्' का प्रमाण, तथा यह 'मनुस्मृति' का प्रकरण, इस बात को सिद्ध करते हैं कि 'वृक्षों में जीव है।'

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी

जो दो मन्त्र 'अथर्ववेद' में प्रमाण रूप में पेश किए गये हैं-उनका अर्थ ठीक नहीं, जो अर्थ पंडित जी ने किया है वह पं. भीमसेन का किया हुआ है। अतः स्वीकार नहीं हो सकता। मैं श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का अर्थ

सुनाता हूँ-**दो प्रकार की हरकत गति होती है-'हरक़ते-इरादी' और 'हरक़ते-इन्तज़ामी' अर्थात् 'विशेषगति' और 'सामान्यगति'। इसलिए 'येन प्राणन्ति वीरुधः' में जिस परमात्मा की शक्ति से लताएँ प्राण धारण करती हैं, ऐसा अर्थ है। संसार के सूर्य, चाँद आदि सब पदार्थ परमात्मा की 'सामान्यगति' (हरक़ते-इन्तज़ामी) से हरकत करते हैं न कि उनमें कोई अभिमानी जीव है, जिस (जीव) की 'हरक़ते इरादी' से कि वे घूमते हों तथा लताएँ प्राण धारण करती हों।** जैसे एक मनुष्य के शरीर में जो गति (हरक़त) पाई जाती है यह 'हरक़ते इरादी' कहलाती है, क्योंकि पुरुष उसे अपने इरादे (इच्छा) से करता है। मनुष्य के शरीर में जो खून की हरकत है वह 'हरकते-इन्तज़ामी' है, क्योंकि परमात्मा के प्रबन्ध से लहू की गति होती है, या जो मनुष्य की बनाई घड़ी में हरकत है वह 'हरक़ते-इन्तज़ामी' है-इसी प्रकार लताओं में 'प्राण धारण'-रूप-गति (हरक़त) परमात्मा की 'हरक़ते-इन्तज़ामी' (सामान्यगति) से अभिप्रेत है- इसी प्रकार 'जीवन्तीम् ओषधीम्' इस मन्त्र में भी सामान्य जीवन से तात्पर्य है। अतएव वेद-विरुद्ध स्मृति भी अप्रमाण है। वृक्षों में 'जीव' के होने के विरुद्ध में भी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का प्रमाण देता हूँ-देखो-तीसरी बार की छपी '**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**'-पुरुषसूक्त, मन्त्र ४, पृष्ठ १२२

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि।।

-यजु. ३१-४

इस मन्त्र के **साशनानशने** पद का अर्थ लिखते हैं कि -**(ततोविश्व.) ततस्तत्सामर्थ्यात् सर्वमिदं विश्वमुत्पद्यते किञ्च तत्? (साशनानशने.) यदेकमशनेन, भोजनकरणेन सह वर्त्तमानं जंगमं जीवचेतनादिसहितं जगत् द्वितीयमनशनमविद्यमानमशनं भोजनं यस्मिंस्तत् पृथिव्यादिकं च यज्जड़ं जीवसंबन्धरहितं जगद्वर्त्तते यदुभयं तस्मादित्यादि।**

अर्थात् ''उस परमात्मा के सामर्थ्य से यह सब संसार उत्पन्न होता है। कौन-कौन सा? एक वह जो भोजन करता है- जिसे 'जंगम' जीव-चेतना आदि से युक्त जगत् कहते हैं और दूसरा वह जो भोजन नहीं करता, जैसे 'पृथिव्यादि' जड़ जो कि जीव के संबन्ध से रहित जगत् है- यह दोनों प्रकार का जगत् पुरुष (परमात्मा) के सामर्थ्य कारण से उत्पन्न होता है''।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज इस '**अनशन**' शब्द के भाष्य में 'जीव-सम्बन्ध रहितं पृथिव्यादिकं जड़म्' लिखते हैं अर्थात् जीव के सम्बन्ध से जो रहित हो वह 'जड़' कहलाता है और वह पृथिव्यादिक है- सो 'पृथिव्यादि' पद में 'आदि' पद से **पृथिवी के कार्य 'वृक्ष' आदि भी पृथिवी के अन्तर्गत होने से जीव से रहित हैं, क्योंकि पृथिवी जीव से रहित है** अतएव जड़ है। तथा 'वेद' में भी 'जीव' का अभाव 'वृक्षों' में पाया जाता है। देखो-

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे।।५।।

ऋग्वेद, मं. १, अष्टक १, अध्याय ७, वर्ग १२।।

इस मन्त्र में '**जगतः प्राणतः**' ऐसा लिखा है, अर्थात् 'जो परमात्मा प्राण धारण करने वाले समस्त जगत् का या (विश्वस्यजगतः) गतिशील संसार का पति हैं।'

'जगत्' को 'प्राण धारण करने वाला' विशेषण देना यह सिद्ध करता है कि जो गतिमान् नहीं है, वह प्राण धारण भी नहीं करता, या जो प्राण धारण करता है वह गतिमान् है। सो 'वृक्ष' गतिमान् नहीं है, अतएव 'प्राणी' भी नहीं है और सजीव भी नहीं है।

श्री पंडित गणपति शर्मा जी

'**येन प्राणन्ति वीरुधः**' में सामान्यगति (हरक़ते-इन्तज़ामी) का कोई जिकर तक नहीं, स्वामी जी को कोई कारण बताना चाहिए कि मुख्यार्थ अर्थात् '**विशेष- प्राणन्**' को छोड़कर क्यों '**गौण-प्राणन्**' का आश्रय किया जाय? इसी प्रकार '**ओषधि**' के लिए भी जो '**जीवन्तीम्**' विशेषण आया है, वहाँ भी सामान्यगति (हरक़ते-इन्तज़ामी) का प्रकरण नहीं है। वह अर्थ पं. भीमसेन जी का पेटेन्ट नहीं है। जब तक उस अर्थ में कोई दोष न दिखाया जाय, वह मान्य है। तथा जो '**साशनानशने**' पद के भाष्य में से '**पृथिव्यादि**' पद के अन्तर्वर्त्ती 'आदि' पद से 'वृक्ष लता' आदि का ग्रहण आप करते हैं, वह ठीक नहीं है, वहाँ 'आदि' पद से 'जल, वायु' आदि का ग्रहण होता है-यदि

ऐसा ग्रहण न कर आप 'वृक्ष' आदि अर्थ लेने लगेंगे तो श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के लेख में पूर्वापर विरोध हो जायेगा, क्योंकि वह वृक्षों में जीव को मानते हैं। देखो सत्यार्थ प्रकाश–नवीं बार का छपा हुआ, पृष्ठ २३५

''**प्रश्न**–ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म, किन्हीं को सिंह आदि क्रूर जन्म, किन्हीं को हरिण, गाय आदि पशु, किन्हीं को '**वृक्षादि**' कृमि कीट पतंगादि जन्म दिये हैं'', इत्यादि।

यहाँ स्पष्टतया '**वृक्ष आदि**' का जन्म स्वीकार करते हैं, इससे यह पाया जाता है कि परमात्मा जीवों को, उनके कर्मानुसार वृक्ष आदि योनियों में भी जन्म देता है। अत: यहाँ (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में) 'आदि' पद से 'वृक्ष' आदि का ग्रहण नहीं करना चाहिए– अन्यथा श्री स्वामी जी के लेख में पूर्वापर विरोध होगा तथा जिस प्रकार आप बिना किसी कारण या प्रकरण के, मेरे प्रमाणरूपेणोपन्यस्त वेदमन्त्रों में प्रधान अर्थ को छोड़कर, और (सामान्य प्राणन्) 'हरक़ते इन्तज़ामी' का अवलम्बन कर, 'गौण' अर्थ को स्वीकार करते हैं, इसी प्रकार मैं भी आपके प्रमाणरूप '**साशनानशने**' पद की व्याख्या में '**पृथिव्यादि**' पद से लिए गये 'वृक्षादि' पदार्थों की जड़ता को यदि 'गौण' कहकर टाल दूँ तो आप क्या कहेंगे? अन्यथा बताइये कि क्यों नहीं 'वृक्ष' आदि की गौण जड़ता मानी जाय? क्योंकि 'जड़' शब्द का प्रयोग 'चेतन' और 'अचतेन' दोनों के लिए पाया जाता है। देखो! श्री भर्तृहरि जी क्या कहते हैं– **जाड्यं धियो हरति...**कि 'सत्संग' बुद्धि की जड़ता को हरता है–'बुद्धि की जड़ता कैसी? श्री गौतम महाराज कहते हैं कि– **बुद्धिरुपलब्धिज्ञानमित्यनर्थान्तरम्**– बुद्धि, उपलब्धि और ज्ञान ये एक ही पदार्थ के नाम हैं। फिर श्री भर्तृहरि जी 'बुद्धि की जड़ता' कैसे कहते हैं? 'ज्ञान की जड़ता'! 'प्रकाश का अंधेरा'! यह परस्पर विरुद्ध धर्म क्योंकर सम्बन्धी हो गये? इससे यही पाया जाता है कि 'जड़ शब्द का प्रयोग चेतन और अचेतन दोनों के लिए आता है', अत: श्री भर्तृहरि जी के वाक्य में 'बुद्धि की जड़ता' से अभिप्राय 'मात्य कुण्ठता' से है और यहाँ आपके मतानुसार 'पृथिव्यादि' पद के 'आदि' पद से गृहीत जो 'वृक्ष' आदि पदार्थ हैं, 'उनकी जड़ता का अभिप्राय जीवाभाव नहीं, किन्तु बाह्यज्ञानाभाव है' (क्योंकि वृक्ष 'अन्त:संज्ञ' होते हैं), यदि ऐसा अर्थ–प्रकरण आदि की अपेक्षा न कर, किया जाय तो क्या वह आपको अभीष्ट होगा? यदि नहीं तो, फिर मेरे पक्ष में, 'सामान्य' =गौण अर्थ हो और आपके पक्ष में प्रधान, यह कहाँ का न्याय है? इस 'अर्द्धजरतीय न्याय' का अवलम्बन क्यों किया जाय?

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी–

'Soul' = आत्मा और 'Life' =प्राण में भेद है। मनुष्य में Soul आत्मा और Life प्राण दोनों हैं, वृक्षों में केवल Life 'प्राण' है Soul 'आत्मा' नहीं। अब '**येन प्राणन्ति वीरुध:**' में साक्षात् Life 'प्राण' का निरूपण है– तो जिस परमात्मा की शक्ति से लताएँ प्राण धारण करती हैं अर्थात् जिसकी 'हरकते इन्तज़ामी' से लताएँ (बेलें) 'प्राण (श्वास) लेती हैं' यह अर्थ हुआ, न कि कोई जीवात्मा अपनी 'हरक़ते इरादी' से साँस ले रहा है। क्योंकि किसी जीवात्मा का यहाँ प्रकरण नहीं, परमात्मा का तो प्रकरण है क्योंकि–

इदं जनासो विदथ महद्ब्रह्म वदिष्यति,
न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुध:।

अथर्व. १/३२/१

इसका अर्थ यों है कि ''हे लोगो! उस 'महाब्रह्म' को जानो, जिसके विषय में कि मैं तुमसे कहता हूँ...इस प्रकार महाब्रह्म का प्रकरण उठाकर कहा है कि (येन.) जिस परमेश्वर (की हरक़ते इन्तज़ामी) से लताएँ प्राण धारण करती हैं।'' अत: इस प्रकार हमने प्रकरण के अनुकूल ही गौण अर्थ किया है। इसी प्रकार दूसरे मन्त्र **जीवन्तीमोषधीम्** में भी जीवन्तीम् शब्द आया है– जो कि 'जीव–प्राणने' धातु से बना है, '**जीव**' धातु का अर्थ '**प्राण' (श्वास) लेना है** अत: 'जीवन्तीम्' पद का अर्थ हुआ 'जीती हुई (ओषधी) को' अर्थात् प्राण धारण करती हुई को, सो यहाँ भी **प्राणन्** मात्र का प्रकरण है, न कि किसी जीवात्मा का। और ओषधी का प्राण धारण करना 'हरक़ते–इन्तज़ामी' से है न कि किसी जीवात्मा की 'हरक़ते–इरादी' से।

तथा 'सत्यार्थ प्रकाश' में से जो वृक्षादि शब्द को लेकर, आप **वृक्षों में जीव का होना (श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के मत के अनुसार है, ऐसा) सिद्ध करते**

हैं वह ठीक नहीं, क्योंकि 'वृक्षादि' शब्द 'क्रम-विरुद्ध' होने से प्रक्षिप्त है। 'प्रक्षिप्त' पद की पहचान यह है कि जिस शब्द के निकाल डालने से अर्थ में कोई क्षति या भेद (फर्क) न आये और रहने से किसी प्रकार का दोष होता हो, वह 'प्रक्षिप्त' है। यहाँ 'वृक्षादि' पद के निकाल देने से कोई फर्क अर्थ (आशय) में नहीं आता, प्रत्युत क्रम ठीक हो जाता है और रहने से 'क्रमविरोध' रूप दोष रहता है। तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के 'साशनानशने' पद के भाष्य से विरोध हो जाता है- अतः वृक्षादि शब्द यहाँ प्रक्षिप्त है। 'क्रमविरोध' दिखाता हूँ, देखो 'सत्यार्थप्रकाश'-पृष्ठ २३५

प्रश्न- ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य-जन्म, किन्हीं को सिंह आदि क्रूर जन्म, किन्हीं को हरिण गाय आदि पशु, किन्हीं को वृक्षादि, कृमि कीट पतंगादि जन्म दिए हैं।

यहाँ जंगमसृष्टि की जन्म-सम्बन्धिनी-विलक्षणता के उपन्यास से, ईश्वर में अन्याय आदि दोषों की आंशका करते-करते हरिण, गाय आदि पशु के पश्चात् 'कृमि कीट पतंग आदि' कहना चाहिये था क्योंकि पहले और अन्त में जंगमसृष्टि का प्रकरण है बीच में वृक्षादि पद असम्बद्ध है क्योंकि वृक्षादि स्थावर है। जंगमों में एकदम कूदकर स्थावर का आना क्रम को तोड़ देता है, अतः प्रक्षिप्त है। एवं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के '**साशनानशने**' पद के भाष्य से विरोध हो जाता है-क्योंकि वहाँ **पृथिव्यादिकं जीवसम्बन्धरहितं जड़म्**। पृथिवी, वृक्ष आदि को जीव के सम्बन्ध से रहित 'जड़' लिखा है। यदि 'सत्यार्थप्रकाश' में वृक्षादि पद प्रक्षिप्त न माना जाय तो वृक्षादि के जन्म का प्रतिपादक ग्रन्थ होने से जड़ प्रतिपादक ग्रन्थ से विरोध हो जायेगा। और यह समानकर्तृक ग्रन्थों में नहीं होना चाहिए, परन्तु वृक्षादि पद के निकाल डालने से क्रमविरोध और पूर्वापर विरोध दोनों दोषों की निवृत्ति हो जाती है। इसलिए यह वृक्षादि शब्द प्रक्षिप्त है। अतएव श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के लेख में 'पूर्वापर विरोध' रूप दोष के परिहार के लिए 'वृक्षादि' पद को निकाल डालना चाहिए। न कि '**साशनानशने**' पद के भाष्य में लिखे गए 'पृथिव्यादि' पद के 'आदि' पद से वृक्षादि अर्थ न लेना चाहिए। (अर्थात् 'वृक्षादि' अर्थ अवश्य लेना चाहिए 'काक्वां' सं)।

इसी प्रकार '**वेदान्तदर्शन**' (शारीरक-भाष्य) **में भी वृक्षादि में मुख्य और गौण जीवात्मा** के होने के विषय में सिद्धान्त किया है कि वृक्षों में मुख्य जीव नहीं है, किन्तु 'गौण' अर्थात् 'अनुशायी' (!) जीव है। गूलर के फलों में जो कीड़े रहते हैं वे 'अनुशायी'! जीव हैं, अर्थात् वृक्षादि के अभिमानी जीव न होकर जो केवल बसेरा मात्र लेते हैं वे 'अनुशायी' (!) जीव कहलाते हैं। जैसे मनुष्य के शरीर में अहंभाव वाला जीवात्मा तो 'अभिमानी' जीव है और इस शरीर में यूका (जूँ) आदि 'अनुशायी' (!) जीव है देखो-

अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात् (वेदान्त सूत्र, अध्याय ३, पाद १ सूक्त २४)

इस सूत्र का शारीरकभाष्य (उत्तर-पक्ष) ''**ब्रीह्यादिषु संसर्गमात्रमनुशायिनः** (!) **प्रतिपद्यन्ते**'' अर्थात् ब्रीहि (धान) आदि में- 'अनुशायी' (!) जीव सम्बन्ध मात्र रखते हैं-

इस वेदान्त सूत्र तथा भाष्य के प्रमाण से भी यही पाया जाता है कि वृक्षों में 'अभिमानी जीव' नहीं है। **श्री कणाद महर्षि** जी भी वृक्षों में जीवात्मा को नहीं मानते। देखो '**वैशेषिकदर्शन**'-

तत्पुनः पृथिव्यादिकार्यद्रव्यं त्रिविधं शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञकम्।

अर्थात् पृथिवी आदि कार्यद्रव्य 'शरीर' 'इन्द्रिय' और 'विषय' इन भेदों से तीन प्रकार का है। इस सूत्र पर '**प्रशस्तपाद-भाष्य**' में व्याख्या देखो-

त्रिविधञ्चास्याः कार्यं शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञकम्...तत्र शरीरं द्विविधं, योनिजमयोनिजम्...इन्द्रियं गन्ध व्यञ्जकं...विषयस्तु द्व्यणुकादिप्रक्रमेणारब्धस्त्रिविधो मृत्पाषाण-स्थावर-लक्षणः तत्र भूप्रदेशाः प्राकारेष्टिकादयो मृद्विकाराः, पाषाणा उपलमणिवज्रादयः, स्थावरास्तृण-गुल्मौषधि-तरु-लता-वितान-वनस्पतयः इति।

इस भाष्य में शरीर और विषय को पृथक्-पृथक् माना है, परन्तु यह तीनों पृथिवी के कार्य हैं, और पृथिवी 'जड़' है। अतः ये भी जड़ हैं। **भोगायतनम् शरीरम्** भोग का आश्रय, शरीर कहलाता है, भोग के साधन 'इन्द्रिय' हैं। 'विषय'=भोग्य अर्थात् भोग में आने वाली वस्तु को कहते हैं। यहाँ पृथिवी के विकाररूप जो विषय हैं, **श्री**

प्रशस्तपादाचार्य, श्री कणाद महर्षि के दर्शन के भाष्य में बताते हैं कि वे (विषय) तृण (घास) आदि हैं। अब इन विषयों को, जो कि भोग्य हैं, यदि 'शरीर' मान लिया जाये तो! क्योंकि जब वृक्षों में 'अभिमानी' जीवात्मा माना जायेगा तो यह वृक्ष आदि उस (जीवात्मा) के शरीर होंगे, वैशेषिक दर्शन से विरोध होगा क्योंकि 'शरीर' और 'विषय' में भेद है। 'विषय' अर्थात् भोग्य पदार्थ भोग का आश्रय (शरीर) नहीं हो सकते, अतः भोक्ता (जीवात्मा) के भोग्य (विषय) वृक्ष आदि हैं, वे जड़ हैं, अतएव जीव से रहित हैं, क्योंकि '**चेतन शरीर**' भोग्य (विषय) नहीं हो सकता। यद्यपि शरीर भौतिक है तथापि चेतनाधिष्ठित होने के कारण गौणवृत्या 'चेतन' के समान लोक में माना जाता है।

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी

'सत्यार्थप्रकाश' के **वृक्षादि** पद को क्रमविरुद्ध नहीं कह सकते, क्योंकि वहाँ क्रमशः किसी विषय का निरूपण विवक्षित नहीं है। 'क्रम' की आवश्यकता तो वहाँ होती है जहाँ वक्ता किसी प्रतिपाद्य विषय में क्रम की विवक्षा रखता हो। यदि बिना विवक्षा के ही क्रम का अड़ंगा लगाया जायेगा तो वेद में भी 'क्रमविरोध' हो जाएगा। देखो पुरुष सूक्त में -**तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं** इस मन्त्र में पशुओं की उत्पत्ति **तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः** इस मन्त्र में वेदों की उत्पत्ति **ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्** इसमें ब्राह्मण आदि वर्णों की उत्पत्ति। तदनन्तर **चन्द्रमा मनसो जातः** में चाँद, सूर्य, वायु, प्राण और अग्नि आदि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है।

यदि इस सूक्त पर 'क्रमविरोध' का कुठार उठाया जाएगा तो 'सूक्त' रूपी तरु का पत्ता-पत्ता भिन्न हो जाएगा- 'पशु' 'वेद' ब्राह्मण आदि 'वर्ण' चाँद, सूर्य, वायु, प्राण और अग्नि क्या इसी लिखे गये क्रम से उत्पन्न हुए थे? क्या इस सृष्टिक्रम को कोई बुद्धिमान् मान लेगा? क्या यह बात बुद्धि में आ सकती है कि पशु पहले उत्पन्न हुए हों और वेद पीछे (मनुष्यों से पहिले)क्या वे वेद पशुओं के आशय (मन) में प्रकाशित हुए थे? क्या चाँद, सूर्य, आग, पानी, हवा आदि के उत्पन्न होने से पहले ही पशु और ब्राह्मणादि उत्पन्न हो गये और जीते रहे? इस बात को कोई विज्ञानवेत्ता मान लेगा? ऐसे 'विरुद्धक्रम' से आक्रान्त वेद को भी क्या आप प्रक्षिप्त मानेंगे? यदि आप यहाँ 'क्रमविरोध' के कारण वेद मन्त्रों को प्रक्षिप्त मानने के लिए तैयार नहीं हैं, तो फिर 'सत्यार्थप्रकाश' बेचारे ने ही क्या अपराध किया है? (जनता में हँसी...) हम क्यों यहाँ वृक्षादि पद को प्रक्षिप्त मान लें? प्रक्षिप्त अंश वही माना जाएगा जहाँ क्रम की विवक्षा सिद्ध होगी, जब यहाँ (सत्यार्थ प्रकाश में) किसी क्रम के प्रतिपादन में अभिप्राय ही नहीं है तो फिर आप क्योंकर 'क्रमविरोध' सिद्ध कर सकते हैं? यहाँ तो केवल योनिवैलक्षण्य के उपन्यसन से, परमात्मा में अन्यायात्मकदूषण के (पूर्वपक्ष द्वारा) उद्भावन में अभिप्राय है, जिसमें कि पूर्वपक्षी की ओर से श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने, वृक्षादि भी 'जीवात्मा' का शरीर (भोगाशय) होने के कारण रख दिए, बस इस शंकाग्रन्थ का इतना ही अभिप्राय है, अतएव प्रक्षिप्त भी नहीं है (**हेत्वसिद्धेरित्यर्थः**) क्योंकि आपका 'विरुद्धक्रम' रूप हेतु ही सिद्ध नहीं हो सकता, जिसका कि अवलम्बन कर, आप विरोध (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका से) दिखाना चाहते हैं।

दूसरे यह है कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका से विरोध तो तब होगा न? कि जब पहले आप '**साशनानशने**' पद के भाष्य के पृथिव्यादि पद के 'आदि' पद से वृक्ष आदि का ग्रहण युक्तियुक्त है-ऐसा सिद्ध कर लेंगे। वही तो आप किसी प्रकार सिद्ध नहीं कर सकते। एक अस्वाभाविक और दीर्घकल्पना के पश्चात् आप 'क्रमविरोध' आदि की दुर्घट घाटियों को तय करके यह निश्चय निकालते हैं कि 'वृक्षादि' पद प्रक्षिप्त है। यह तो (वंशाल्लट्वाकर्षणोदाहरणमनुहरणमेतच्छ्रीमतम्) खोदा पहाड़ और निकला चूहा, और वह भी अधमुआ, अतः 'वृक्षादि' पद को प्रक्षिप्त कहकर 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में के 'साशनानशने' पद के भाष्य में से 'पृथिव्यादि' पद के 'आदि' पद से वृक्षों का ग्रहण करके, एवं उनकी जड़ता सिद्ध करके, सत्यार्थप्रकाश के इस प्रकरण से हमारे दिये गये 'पूर्वापरविरोध' का परिहार आप नहीं कर सकते। सो महाराज! भूमिका में 'वृक्ष' आदि का ग्रहण न कर जल-वायु आदि का ग्रहण करना चाहिए-अन्यथा आपके पक्ष में मेरी ओर से दिए गए 'पूर्वापरविरोध' का परिहार नहीं हो सकेगा, इसलिए यही मानना चाहिए कि श्री स्वामी

दयानन्द सरस्वती जी महाराज, वृक्षों में अवश्य 'अभिमानी' जीव को मानते हैं।

'साइंस' के अनुसार ही यदि आप Soul (आत्मा) और Life (प्राण) को मानते हैं तो पशुओं में भी आपको Life (प्राण) ही मानना चाहिए क्योंकि सांइटिस्ट लोग पशुओं में Soul (आत्मा)को नहीं मानते। अतएव पशुओं को मारने में हिंसा भी नहीं माननी चाहिए। परन्तु ऐसा मानने के लिए आप कभी भी तैयार नहीं होंगे। यदि आप वृक्षों में साइंस के अनुसार तो 'प्राण' मानें और पशुओं में (साइंस के विरुद्ध) आत्मा मानें तो यह 'अर्धजरतीय' न्यायाचरण आपको शोभा नहीं देगा। अत: वृक्षों में Life (प्राण) मात्र मानकर और उसका परमात्मा की 'हरक़ते-इन्तज़ामी' से चलना मानकर आप वृक्षों में जीव का अभाव सिद्ध नहीं कर सकते। क्योंकि प्राण बिना जीव के हो ही नहीं सकता। परमात्मा की 'हरक़ते-इन्तज़ामी' तो सभी जगह मानी ही जाती है, मनुष्य के शरीर में भी तो परमात्मा की ही 'हरक़ते-इन्तज़ामी' से 'प्राण' चलते हैं। यदि जीवात्मा के ही अधीन प्राण हों तो मरते समय वह प्राणों को कभी भी न निकलने दे। अत: **येन प्राणन्ति वीरुध: जीवन्तीमोषधीम्** इन मन्त्रों में लताओं आदि का प्राण धारण करना, बिना जीव के उत्पन्न ही नहीं हो सकता, अत: वृक्षों में जीव का अपलाप कर, केवल 'हरक़ते-इन्तज़ामी' से काम नहीं चल सकता। क्योंकि प्राण बिना जीव के कभी रह ही नहीं सकता। 'आत्मा' का नाम ही जीव इसीलिए है कि वह प्राण धारण करता है। देखो! श्री महर्षि 'पाणिनि' जी महाराज '**जीव प्राणने**' लिखते हैं कि जीव धातु प्राणन् (श्वास लेना रूप) अर्थ में है, और वृक्षों में प्राण आदि का होना पहले कही गई श्रुति और स्मृति द्वारा सिद्ध है- आपकी 'साइंस' भी इनमें Life (प्राण) को मानती है। यदि इन्हें 'नाइट्रोजन' न मिले तो ये सूख जायें। अत: प्राण की सत्ता, जीव की सत्ता की साधिका है।

'**वेदान्त सूत्र**' में 'मुख्य' और 'गौण' जीव पर कोई विचार नहीं है, वहाँ तो पञ्चाग्निविद्या के प्रकरण पर विचार है। तथा आपने जो मेरी पेश की हुई श्रुति पर गौण-प्रधान मानकर आक्षेप किया था और उसमें जो हेतु दिया था उस सबका निराकरण मैं कर चुका हूँ। अत: 'श्रुति' तथा 'छान्दोग्योपनिषत्' और 'मनुस्मृति' के प्रमाण से यह मानना चाहिए कि 'वृक्षों में जीव है।'

अन्यथा आपको बताना चाहिए कि, जिस प्रकार बिना कारण के मन्त्रों में 'सामान्य गति' का आश्रयण आप करते हैं। ऐसे ही आपके 'साशनानशने' पद के भाष्य में 'पृथिव्यादि' पद में 'आदि' पद से गृहीत वृक्षादि में 'गौण जड़ता' (बहि: संज्ञत्वाभावात्मिका) क्यों न मानी जाय? यहा कहाँ का न्याय है कि मेरे पक्ष के हेतु को तो 'गौणता' की उपाधि से उड़ा दिया जाय और आपका सोपाधिक हेतु उसी गौणता से बचा रहे।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी

'छान्दोग्योपनिषत्' के **अस्य सोम्य! महतो वृक्षस्य** इत्यादि मन्त्र के प्रमाण से, जो वृक्षों में जीव का होना सिद्ध किया गया है, वह ठीक नहीं है, क्योंकि यहाँ 'वृक्ष' शब्द का अर्थ 'शरीर' है, 'पेड़' नहीं। **द्वा सुपर्णा** इत्यादि मन्त्र में वृक्ष शब्द का अर्थ 'शरीर' ही किया गया है, 'वृक्ष' शब्द '**ओ वृश्चू छेदने**' धातु से बना है अर्थात् (अविद्याकार्यत्वात्तत्त्वज्ञानादिना छेदनयोग्यं शरीरमिति) 'वृक्ष' नाम शरीर का है क्योंकि तत्त्वज्ञान आदि से छेदन किया जा सकता है। दूसरा हेतु यह है कि इस श्रुति में 'म्रियते' पद आया है, वृक्ष के लिए 'म्रियते' (मरना) पद कहीं नहीं आता। प्रत्युत् शरीर के लिए ही 'म्रियते' पद का प्रयोग होता है, 'जीवात्मा' के लिए 'म्रियते' पद नहीं आ सकता क्योंकि जीव 'नित्य' है। इसलिए '**अस्य सोम्य! महतो वृक्षस्य**' इस श्रुति से, 'वृक्ष शब्द शरीर का पर्याय होने से, वृक्षों में जीव होना सिद्ध नहीं हो सकता।'

'सत्यार्थप्रकाश' में भी 'वृक्षादि' पद प्रक्षिप्त है क्योंकि वहाँ 'वृक्षादि' पद होने से लेख का क्रम टूट जाता है, क्योंकि 'ईश्वर' ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म, किन्हीं को सिंह आदि क्रूर जन्म, किन्हीं को हरिण गाय आदि पशु, किन्हीं को 'वृक्षादि' इतने पाठ के पश्चात् पहली लेख प्रणाली के अनुसार, 'कृमि कीट पंतगादि' इस लेख के पूर्व 'किन्हीं को' ऐसा पाठ अवश्य आना चाहिए था, परन्तु ऐसा पाठ है नहीं, और विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि वृक्षादि शब्द के पूर्व जो, 'किन्हीं को' पद आया है वह कृमि पतंगादि पद के पहले था और जब

'वृक्षादि' पद के मिला देने से वह ('किन्हीं को' पद) उससे दूर जा पड़ा। अत: लेख शैली तथा पूर्वोक्त (आर्थिक) क्रमविरोध तथा भूमिका के '**साशनानशने**' पद के भाष्य से विरुद्ध होने के कारण यह 'वृक्षादि' पद प्रक्षिप्त है। क्योंकि यहाँ पृथक् अनमेल सा होने से खटकता है, अत: 'सत्यार्थप्रकाश' के इस लेख से वृक्षों में जीव का होना सिद्ध नहीं किया जा सकता और न भूमिका के '**साशनानशने**' पद के भाष्यान्तर्गत 'पृथिव्यादि' पद के 'आदि' पद से लिए गए 'वृक्ष आदि' का अर्थ के कारण, पूर्वापरविरोध हो सकता है।

एवं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में जो आप वृक्ष आदि की 'गौण' जड़ता की कल्पना करते हैं कि जड़ता से अभिप्राय 'बाह्यज्ञानाभाव' क्यों न लिया जाय, वह भी ठीक नहीं है क्योंकि वहाँ **जीवसम्बन्धरहितम् जड़म्** यह जड़ का लक्षण कर दिया गया है, 'लक्षण' में गौणकल्पना नहीं हो सकती, क्योंकि लक्षण में औपचारिक (गौण) पद नहीं रखे जाया करते। औपचारिक पद तो सामान्य बोल-चाल आदि में ही हुआ करते हैं, जैसे कहा जाए कि 'ज्वालापुर आ गया' यहाँ 'ज्वालापुर-नगर' जड़ वस्तु है उसमें 'आना' रूप-क्रिया नहीं हो सकती। ''अत: उसका गौण अर्थ यह लिया जाता है कि हम ज्वालापुर में आ गये''। अत: वृक्षों की जड़ता से कोई गौण अर्थ नहीं लिया जा सकता क्योंकि यहाँ लक्षण कर दिया गया है कि हमारा (स्वामी दयानन्द जी का) अभिप्राय 'जीवाभाव' से है तो यह बात सिद्ध हुई कि 'जीवाभाव' से अतिरिक्त किसी अन्य अर्थ की कल्पना वहाँ नहीं कर सकते, अब यह बात स्पष्ट हो गई कि पृथिव्यादि जीव से रहित हैं और इसे आप भी मानते हैं अन्यथा पृथिव्यादि में भी आप को जीव मानना पड़ेगा जो कि आपके मतानुरूप नहीं है। अत: भूमिका से विरोध न आने पाये इसलिए सत्यार्थ प्रकाश में से 'वृक्षादि' पद को निकाल डालना चाहिए।

तथा प्रशस्तपादभाष्य में शरीर, इन्द्रिय और विषय के पृथक्-पृथक् माने जाने से, 'विषय' जो वृक्ष आदि हैं वे शरीर नहीं हो सकते। भोग-आश्रय ही 'भोग्य' नहीं हो सकता। वृक्ष आदि को यदि जीवयुक्त माना जाएगा तो वृक्ष आदि, स्वाभिमानी जीव के शरीर होगें, ऐसी दशा में 'वृक्ष' भोग का आश्रय 'शरीर' हुआ-वह 'भोग्य' क्यों कर हो सकता है? जैसे कि मनुष्य का 'शरीर' 'विषय' नहीं हो सकता, फिर चाहे वह (शरीर) पार्थिव ही क्यों न हो, जैसे कि 'विषय' पार्थिव है, परन्तु श्री कणाद के भाष्यकार श्री प्रशस्तपादाचार्य वृक्षों को भोग्य (विषय) कह रहे हैं।'विषय' भोक्ता के भोगने के लिए होते हैं, यदि वृक्षों में तदभिमानी जीव मानकर, उनको शरीर माना जाएगा, तो वह जीव उसी शरीर को 'भोग्य' कर जाय। इस प्रकार की कल्पना सर्वथा असमंजस है अत: यही निश्चय है कि 'वृक्ष' विषय हैं अतएव जड़ हैं अर्थात् जीव-सम्बन्ध से रहित हैं।

वेदान्त में 'पंचाग्निविद्या' का प्रकरण नहीं है, वहाँ तो यह कहा गया है कि 'ब्रीहि आदि में' अनुशायी (!) 'जीव' संसर्गमात्र को प्राप्त होते हैं और 'छान्दोग्योपनिषद्' के **अस्य सोम्य! महतो वृक्षस्य** इत्यादि भाग पर भाष्य में श्री शंकाराचार्य जी लिखते हैं कि-

बौद्धमते स्थावराश्चेतना:, कणादमते तु स्थावरा जड़ा:(?)

अर्थात् बुद्धानुयायियों के मत में स्थावर (वृक्षादि) चेतन हैं और कणाद के मत में स्थावर जड़ हैं, इससे यह बात स्पष्ट है कि शंकराचार्य, आस्तिक कणाद के मत को स्वानुकूल होने से स्वीकार करते हैं और बौद्ध मत का खण्डन करते हैं, क्योंकि वे (बौद्ध लोग) नास्तिक थे, अत: वेदान्त सूत्र भाष्य तथा छन्दोग्योपनिषद् भाष्य में श्री शंकराचार्य जी भी वृक्षों में जीव के अभाव को मानते हैं।

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी

यद्यपि यह बात सत्य है कि **द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं 'वृक्षं' परिषस्वजाते। तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति।।** तथा-**समाने 'वृक्षे' पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमान:। जुष्टं यदा पश्त्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोक:।।**

इत्यादि मन्त्रों में 'रूपकालंकार' होने के कारण 'वृक्ष' शब्द का अर्थ 'देह' ले लिया जाय, क्योंकि यहाँ 'जीवात्मा' तथा 'परमात्मा' के तत्त्व का निरूपण उनको दो पक्षियों के समान मानकर किया गया है। जैसे पक्षी वृक्ष पर बैठते हैं और उनके (पिप्पल) फल को खाते हैं, ऐसे ही जीव और परमात्मा रूपी पक्षियों के लिए 'उच्छेदन सामान्य' से अर्थात् जैसे छेदन से, नष्ट हो जाने के कारण पेड़ का नाम 'वृक्ष' है

वैसे ही 'देह' भी तत्त्वज्ञान से नष्ट (छिन्न) हो जाता है, अतः छेदन रूप-समान धर्म्मवान् होने के कारण 'देह' के लिए यहाँ 'वृक्ष' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'देह' वृक्ष रूप है और इसीलिए 'पिप्पल' शब्द, भोग्य के समान होने के कारण कर्मों के शुभाशुभ फलों के अर्थ में माना जाता है, परन्तु ''**अस्य सोम्य! महतो वृक्षस्य**'' इस श्रुति में कोई ऐसा कारण प्रतीत नहीं होता कि, क्यों यहाँ भी 'वृक्ष' शब्द का अर्थ 'शरीर' लिया जाय? यह कोई दलील नहीं कि एक स्थान में कारण विशेष से एक शब्द अमुक अर्थ में आ गया, अतः सर्वत्र उसी अर्थ में उसे माना जाय। ऐसा मानने से सर्वत्र अव्यवस्था तथा अविश्वास हो जाएगा और प्रत्येक स्थान में, आप स्वरस अर्थ को छोड़कर 'गौण' कल्पना करते हैं, कहीं 'प्रक्षेप' का अड़ंगा लगा देते हैं, क्यों नहीं स्वरस अर्थ को स्वीकार कर सीधी कल्पना का अवलम्बन करते? जब 'वृक्ष' शब्द का मुख्य प्रयोग 'पेड़' के लिए सर्वलोक में किया जाता है तो बिना कारण, क्यों गौण कल्पना तक दौड़ने का परिश्रम उठाया जाए? एक क्षणभर के लिए यदि 'वृक्ष' शब्द का अर्थ यहाँ बिना किसी कारण के आपके अनुरोध मात्र से, 'शरीर' ही मान लिया जाए तो आप ही फिर बताइये कि-

अस्य सोम्य! महतो वृक्षस्य मूलेऽभ्याहन्यात्, मध्येऽभ्याहन्यात्, अग्रेऽभ्याहन्यात्, पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति... एकां शाखां जहाति, द्वितीयां... तृतीयां...सा शुष्यति... सर्वः शुष्यति।

इत्यादि में शेष 'वृक्ष' पेड़ सम्बन्धी अंगों का क्या हाल होगा? इन बेचारों की क्या गति होगी? इनके वृक्ष, ('शरीर' अर्थ मानकर) मूल (जड़), मध्य, अगला भाग शाखा (टहनी), एक शाखा, दूसरी शाखा, तीसरी शाखा, सब शाखाएं, उन शाखाओं का सूखना, सारे 'वृक्ष का सूखना' आदि शब्दों के झटपट स्फुरण होने वाले स्वरस अर्थ को छोड़कर कहाँ तक गौण-कल्पना के लिए व्यर्थ-शिरः कपाल को परिश्रान्त करेंगे।

और आप यह जो कहते हैं कि 'वृक्ष' के लिये म्रियते (मरना) शब्द का प्रयोग नहीं होता और शरीर के लिए 'म्रियते' प्रयोग होता है अतः 'वृक्ष' शब्द का अर्थ शरीर लेना चाहिए-यह भी आपका कहना ठीक नहीं है। यहाँ 'म्रियते' पद शरीर के लिए आया ही है- पर ऐसा नहीं, जिस प्रकार कि आप जोड़-तोड़ कर रहे हैं-उपनिषद् के सब प्रकरण को देखिए।

भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति, तथा सोम्येति होवाच-

श्री आरुणि उद्दालक जी महाराज स्वपुत्र 'श्वेतकेतु' को नाना प्रकार के दृष्टान्तों से 'आत्म-ज्ञान' के लिए उपदेश कर रहे हैं, श्वेतकेतु नहीं समझता और बार-बार कहता है कि भगवान् मुझको फिर बतावें कि आत्मा कैसे नित्य है और शरीर कैसे अनित्य है? पिता कहते हैं कि 'सोम्य'! सुनो-(दृष्टान्त से समझाते हैं) '**अस्य सोम्य! महतो वृक्षस्य**' इत्यादि आरम्भ करके '**सर्वं जहाति सर्वः शुष्यति**' यहाँ तक वृक्ष का दृष्टान्त देकर दार्ष्टान्त वाक्य से उपसंहार करते हैं कि-

एवमेव खलु सोम्य! विद्धीति होवाच, जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियते इति।

इसी प्रकार, (जैसे कि वृक्ष की दशा वर्णन की गई) हे सोम्य! जीव से वियुक्त होकर यह शरीर मर जाता है, जीव नहीं मरता, परन्तु आप दृष्टान्त तथा दार्ष्टान्तवाक्य को, सब एकमय करके यह समझ रहे हैं कि यह 'मरना' भी ऊपर आए 'वृक्ष' (जिसका अर्थ आप 'शरीर' मान बैठे हैं) के लिए ही प्रयुक्त हुआ है- हालांकि 'म्रियते' पद दृष्टान्त में कहे गये वृक्ष के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ। यदि ऐसा होता तो **जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते** न होता किन्तु **जीवापेतो वाव किलायं म्रियते** ऐसा पाठ होता, जैसे कि ऊपर 'सर्वःशुष्यति' में हुआ है क्योंकि वृक्ष शब्द पुल्लिंग है, उसके विशेषण भी पुल्लिंग में ही होने चाहिए थे। और कदाचित् आप नहीं मानते और सर्वथा पाठ की अवहेलना तथा पूर्वाचार्यों की व्याख्या का निरादर कर स्वतन्त्र जोड़-तोड़ किए बिना नहीं सन्तुष्ट होते तो हम यह सिद्ध करते हैं कि वृक्षों के लिए भी 'मरना' शब्द का प्रयोग होता है, देखिए! लोक में बोलते हैं कि 'फसल मारी गई' 'खेती मारी गई'। तथा रघुवंश में देखिए!

अथवा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तकः।
हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता।।

(रघुवंश, ८-४५)

इसकी टीका में 'मल्लिनाथ' लिखते हैं-

अत्रार्थे हिमसेकेन तुषार निष्यन्देन विपत्ति-मृत्युर्यस्याः सा तथा नलिनी पद्मिनी मे पूर्वप्रथमं निदर्शनमुदाहरणं मता-

अतः संस्कृत भाषा में भी वृक्षों के लिए 'मृत्यु' शब्द का प्रयोग आता है। अतः चूँकि वृक्षों के लिए 'म्रियते' पद का प्रयोग हो नहीं सकता इसलिए यहाँ 'वृक्ष' शब्द का अर्थ पेड़ भी नहीं हो सकता ऐसा आप नहीं कह सकते तथा जो आप श्री कणाद तथा श्री प्रशस्तपादाचार्य के सिद्धान्त का उपन्यास कर श्रुति, स्मृति तथा श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के लेखों में मुख्यार्थ को छोड़कर गौण कल्पना तथा प्रक्षेप आदि प्रपञ्च रचते हैं, वह ठीक नहीं है। क्योंकि श्रुति तथा श्रुत्यनुसारी स्मृति-वचनों से विरुद्ध होने के कारण 'कणादस्मृति' हेय (त्याज्य) है। यदि आप स्मृति के बल से, 'वैशेषिकदर्शन' स्मृति ही है, काणादमत की स्थापना करेंगे तो हम भी मानवमत को स्मृतरूप से प्रत्यवस्थापित करेंगे। (''**स्मृत्यनवकाशदोषप्रसंग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसंगात्**'') (वेदान्तसूत्र) का यही भाव हैं। इन दोनों में से एक को अवश्य मानना होगा और दूसरी को अवश्य छोड़ना होगा। दोनों विरुद्ध ज्ञान को समर्पित होने से अंगीकार्य नहीं हो सकतीं। अतः श्रुति के अनुकूल होने के कारण मनु का पक्ष ग्राह्य है और श्रुति-विपरीत काणादमत अनुपादेय है। सो महाराज! वेदविरुद्ध काणादमत के बल पर, आप हम पर आक्षेप नहीं कर सकते। तथा छान्दोग्योपनिषद् शांकरभाष्य में से **बौद्धमते स्थावराश्चेतनाः, काणादमते तु स्थावरा जड़ाः** यह विचित्र पाठ सुनाकर मनमानी **कतरब्योत** कर रहे हैं, देखिये! यहाँ का ठीक पाठ और उसका अर्थ-

वृक्षस्य रसश्रवणशोषणादिलिंङ्गाज्जीववत्त्वं दृष्टान्तश्रुतेश्च चेतनावन्तः स्थावरा इति, बौद्धकाणादमतमचेतनाः स्थावरा इत्येतदसारमिति दर्शितं भवति। इस शांकर भाष्य पर श्री आनन्दगिरी कृत टीका भी देखिये-

यत्तु वैशेषिकवैनाशिकाभ्यां स्थावराणां निर्जीवत्वेनाचेतनत्वमुक्तं, तदेतन्निरस्तमित्याह-वृक्षस्येति। आदि-

शब्दो बुद्धिमोददादिसंग्रहार्थः। स एष वृक्षो जीवेनाऽत्मनाऽनुप्रभूत इति दृष्टान्तश्रुतिः।।२।।

इसका अर्थ भी सुनिये-रस के टपकने और सूखने आदि हेतुओं से वृक्षों का जीववान् होना और दृष्टान्त श्रुति से स्थावर, चेतना वाले हैं (यह बात सिद्ध हुई) (**इतिहेतोरित्यर्थः**) इसलिए, बौद्धों और काणादों का मत, कि स्थावर अचेतन (जड़) हैं यह बात 'असार' (सारहीन-झूठ) है अर्थापत्या दिखा दी गई। आनन्दगिरिकृतटीका का अर्थ भी देखिये- 'वैशेषिक' अर्थात् कणाद के मत को मानने वाले, तथा 'वैनाशिक' बौद्ध आदि नास्तिक लोग, जो यह कहते हैं कि 'जीव से रहित होने के कारण स्थावर अचेतन हैं'- यह बात खंडित हो गई। अतः भाष्यकार कहते हैं 'वृक्षस्य' इत्यादि, (मूल में)। भाष्य के शोषणादि पद में जो आदि पद है उससे बुद्धि और मोद (प्रसन्नता) आदि समझना। **स एव वृक्षो जीवेनात्मनाऽनुप्रभूतः** -यह 'दृष्टान्तश्रुति' है। इस प्रकार शांकरभाष्य का यह ठीक पाठ तथा अर्थ, हमने खोल दिया है आप जो पाठ सुनते हैं वह, 'पाठ' न जाने कहाँ का है? इसी प्रकार आप सब स्थानों में प्रमाणाभास तथा युक्त्याभास से न जाने क्यों प्रेम रखते हैं?

वेदान्तदर्शन के अध्याय ३ के प्रथमपाद में **पञ्चाग्निविद्या** सम्बन्धी नाना विचार हैं- उसमें से यह छठा अधिकरण है, जिसे आप मनचाहा नोच खसोट रहे हैं। प्रथम तो 'अनुशयी' शब्द है, 'अनुशायी' नहीं। जिसका अर्थ है 'अनुशय वाले।' 'अनुशय' कर्म को कहते हैं। इसी पाद में **कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च** इस सूत्र में यह निश्चय कर चुके हैं कि जो लोग 'चन्द्रलोक' में जाते हैं, क्या वे सब अपने कर्मों के फल को भोगकर भूलोक पर उतरते हैं या कुछ कर्म (शेष) साथ लेकर उतरते हैं? इस प्रकार आशंका करके वहाँ यह निर्णय किया है कि '**कृतात्यये**' अर्थात् उन कर्मों के, जिनके कारण कि 'चन्द्रलोक' में जाते हैं। फल की समाप्ति पर अनुशयवान् अर्थात् और-और कर्मों से युक्त (**चन्द्रलोक प्राप्तिनिमित्तककर्मेतरकर्मवन्तः इतिभावः**) ही उतरते हैं- इत्यादि। फिर इस छठे अधिकरण में यह विचार है कि वही 'अनुशयी' (अनुशायी नहीं) जीव जो कि चन्द्रलोक से अवरोहण कर रहे हैं क्या **त इह व्रीहियवा औषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्ते** इस श्रुति का

यह अभिप्राय है कि वे जीव, ब्रीहि (धान) औषधि आदि की जाति 'जन्म' को प्राप्त हो जाते हैं या इन (वनस्पति आदि) से सम्बन्ध मात्र रखते हैं? इस प्रकार सन्देह करके पूर्वपक्षी की ओर से यह कहकर कि धान आदि की योनि को प्राप्त होते हैं, ऐसा मानना चाहिए- निश्चय करते हैं कि **अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्**। अन्य जीवों से अधिष्ठित व्रीहि आदिकों में अनुशयी अर्थात् अनुशय (कर्म) वाले जीवों का सम्बन्ध मात्र होता है। परन्तु आप इस भाष्य के विपरीत अनुशयी का अनुशायी बनाकर, उसका मनमाना अर्थ बताते हैं। जो किसी शास्त्रकार ने नहीं माना और देखिये, सूत्र में **अन्याधिष्ठितेषु** पद साफ बता रहा है कि ब्रीहि आदि अन्य जीवों से अधिष्ठित होते हैं अर्थात् अन्य जीव, ब्रीहि आदि के अधिष्ठाता (अभिमानी जीव) होते हैं, जैसे हम अपने-अपने शरीर के अधिष्ठाता हैं। अत: यह किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं कर सकते कि श्री शंकराचार्य या श्री व्यास जी महाराज वृक्षों में 'जीव' नहीं मानते थे, प्रत्युत् यह बात निर्विवाद है कि ये दोनों ही श्रुत्यनुकूल होने से वृक्षों में अधिष्ठातृ-(अभिमानी) जीव को मानते हैं।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी-

श्री कणाद महर्षि के मत से हमने श्रुति का गौण अर्थ किया, आप उसका खण्डन 'रघुवंश' के प्रमाण से करते हैं। कणाद के सामने कालिदास को क्यों प्रमाण माना जाय? साहित्य के जानने वाले 'आत्म विद्या' को क्या जानें? तथा लोक भी प्रमाण नहीं माना जा सकता-लोक में तो 'फसल मारी गई' ऐसे स्थान में गौण (उपचार से) प्रयोग होता है, अत: लोक में 'मरना' शब्द का प्रयोग वृक्षों के लिए आता है इसलिए श्रुति में भी ठीक है, यह ठीक नहीं। छान्दोग्योपनिषद् में यदि यह मान भी लिया जाय कि शंकराचार्य ने वृक्षों में जीव होना लिखा है तो **अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्** के भाष्य से विरुद्ध होने के कारण अप्रमाण है, क्योंकि शंकाराचार्य अशुद्धि (गलती) या विरोध कर सकते थे, वे ऋषि नहीं थे। 'सत्यार्थप्रकाश' के ११ वें पृष्ठ में **सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च** का अर्थ करते हुए श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज लिखते हैं कि-**जो जगत् नाम प्राणी चेतन और जंगम अर्थात् जो चलते-फिरते हैं, 'तस्थुष:' अप्राणी अर्थात् स्थावर, जड़ पदार्थ पृथिवी आदि हैं**-इत्यादि प्रमाण से यह बात स्पष्ट है कि श्री स्वामी दयानन्द जी स्थावरों को जड़ मानते थे तथा सत्यार्थप्रकाश के २२१ वें पृष्ठ में कहीं-कहीं जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथिवी में गिरने और जल पाने से वृक्षाकार हो जाते हैं, इत्यादि प्रकरण में भी जड़ बीज से उत्पन्न वृक्षों को जड़ ही मानते हैं। क्योंकि यहाँ जड़ पृथिवी और जड़ जल के निमित्त से, जड़ बीज का वृक्षाकार होना लिखते हैं। अत: इन दो प्रमाणों से यह बात सिद्ध है कि वृक्षों में जीव नहीं है, इन कारणों से भी सत्यार्थप्रकाश के २३५ वें पृष्ठ में से 'वृक्षादि' पद प्रक्षिप्त है ऐसा प्रतीत होता है। पहले कही गई युक्तियों और इन दो प्रमाणों के विरुद्ध होने के कारण 'वृक्षादि' पद को निकाल डालना चाहिए। वेदान्तदर्शन भाष्य में पूर्वपक्ष प्रमाण नहीं माना जा सकता। आप पूर्वपक्ष पढ़ते हैं-उत्तर पक्ष प्रमाण है। १७६ स्थानों में मिलेगा कि वृक्षों में जीव नहीं है।

श्री पंडित गणपति शर्मा जी-

श्री शंकराचार्य के लेख में पूर्वापर विरोध नहीं हो सकता, जिस मनमाने पाठ के बल पर आप विरोध दिखा रहे हैं-वैसा पाठ ही कहीं नहीं है, ऐसा विरोध केवल 'वन्ध्यापुत्र' के 'नाम' के विरोध के समान है। वेदान्तदर्शन के अवरोहण प्रकरण की स्पष्ट व्याख्या करने पर भी यदि आप नहीं मानते तो इसका क्या किया जाय? और न इसका आप कुछ खण्डन करते हैं। आप कहते हैं कि कालिदास तथा मल्लिनाथ का लेख प्रमाण नहीं हो सकता। वे आत्मविद्या को क्या जानें- हम आप से कहते हैं कि आप श्री शंकराचार्य का प्रमाण देते हैं वे भी प्रमाण नहीं होने चाहिएं, क्योंकि आर्यसमाजिक उन्हें भी तो ऋषि नहीं मानते। यदि आप शंकराचार्य के लेख को प्रमाणरूप से पेश करेंगे तो कोई वजह नहीं कि मल्लिनाथ जैसे षड्दर्शन के तत्त्ववेत्ता को प्रमाण न माना जाय-देखिये वे अपनी '**विद्यापारदृश्यता**' के विषय में कैसा अच्छा लिखते हैं-

वाणी काणभुजीमजीगणदवाशासीच्च वैयासिकीमन्तस्तन्त्रमरंस्त, पन्नगवीगुम्फेषु चाजागरीत्। वाचानाकलयदहस्यमखिलं यश्चाक्षपादस्फुरां, लोकेऽभूद्यदुपज्ञमेव विदुषां सौजन्यजन्यं यश:।

मल्लिनाथकविः सोयमित्यादि...।

अर्थ-जो (मल्लिनाथ) कणाद की वाणी (वैशेषिक दर्शन) को जान चुका है और जो व्यास की वाणी (वेदान्तदर्शन) की शिक्षा पा चुका है, 'तन्त्र' शास्त्र (मारण, माहन, उच्चाटन आदि विद्या के प्रतिपादक शास्त्र) में जो रमण कर चुका है। जो श्री पतञ्जलि के महाभाष्य में जागरूक (खबरदार) है अर्थात् जिसको 'महाभाष्यान्त' व्याकरण स्मरण है। जो गौतम के बनाये न्याय शास्त्र के सम्पूर्ण तत्त्व को जानता है। विद्वानों के, 'सौजन्य' से उत्पन्न यश का जो उपज्ञाता (ईजादकुनिन्दा) (Theorist) थ्योरिस्ट है। वह कवि (शायर) मल्लिनाथ इत्यादि- इस प्रकार गुणगणसमन्वित महाविद्वान् की बात को यो टाल देना-कि ''ऋषि नहीं-यह नहीं-वह नहीं,'' ठीक नहीं। हम और आप लोगों की अपेक्षा वह महापण्डित था। सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २११ में बीज को जड़ कहा है- न कि वृक्ष को अभिमानी जीव से शून्य। मनुष्य, पशु आदि के शरीर भी तो 'जड़-रजोवीर्य्य' से ही बनते हैं। अतः मनुष्य भी जड़ हैं, ऐसा नहीं कह सकते-एवं जड़ बीज से उत्पन्न वृक्ष चेतनात्मा से अधिष्ठित नहीं है, यह नहीं कह सकते। सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २११ में स्थावर से जड़ पृथिवी जल आदि लिये गये हैं, न कि वृक्ष आदि, क्योंकि 'स्थावर' पद का अर्थ स्थिर रहने वाला है, अतएव स्थिर रहने वाले पृथिवी आदि पंचमहाभूत तथा वृक्ष आदि हैं- इसी कारण से कि यहाँ स्थावर शब्द से वृक्ष आदि का ग्रहण भी लोग न कर लें, अतः जड़ विशेषण दिया है वरना पृथिवी आदि जड़ होते ही हैं यह लिखने की क्या आवश्यकता थी?

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी

पण्डित जी ने अथर्ववेद के जो दो मन्त्र प्रमाण रूप से वर्णन किए-उनका उत्तर सामान्य तथा विशेष-प्राणन् की व्याख्या से दे चुका हूँ अर्थात् मैं यह बता चुका हूँ कि वहाँ ओषधी आदि के जीवन से तात्पर्य सामान्य जीवन से है। जैसे चाँद सूर्य आदि पदार्थ परमात्मा की 'हरक़ते-इंतज़ामी' से ही गति (हरकत) करते हैं, ऐसे ही परमात्मा की सामान्य-नियामिक शक्ति से वृक्ष आदि प्राण धारण करते हैं, किसी 'अभिमानी' जीव की विशेष शक्ति से नहीं। और कि यह सामान्यगति का आश्रयण प्रकरण के अनुकूल है, प्रतिकूल नहीं। तथा जिस-जिस योनि में जीव की स्थिति मानी जाय, वहाँ इस बात का विचार अवश्य करना चाहिए कि वह 'कर्मयोनि' है या 'भोगयोनि'।

उभययोनि-विचार से यह बात स्पष्ट हो सकती है कि इस योनि में जीव है या नहीं, क्योंकि जीव अपने शुभाशुभ कर्मों के फलों को भोगने तथा नये कर्मों को करने के लिए ही शरीरादिसाधनात्मक योनियों को प्राप्त होता है। यदि मान लें कि जीव अपने बुरे कर्मों के कारण स्थावर (वृक्ष) भाव को प्राप्त होता है तो स्थावरों को 'कर्मयोनि' इसलिए नहीं कह सकते कि मनुष्ययोनि के अतिरिक्त और कोई कर्मयोनि संसार भर में नहीं है, यह सर्वसम्मत बात है। यद्यपि मनुष्ययोनि में भोग भी होता है तथा मनुष्ययोनि कर्मप्रधान होने से 'कर्मयोनि' ही मानी जाती है, भोग तो केवल (कर्म के साधनरूप) शरीर की रक्षा के लिए हैं। यद्यपि **कुर्वते कर्म भोगाय कर्म कर्त्तुञ्च भुञ्जते** कर्म भोग के लिए करते हैं और भोग कर्म करने के लिये करते हैं, यह लोकोक्ति है। तथापि यह मनुष्य-शरीर भोग की खातिर नहीं मिला है, किन्तु यह शरीर कर्म करने के लिए ही मिला है। भोग आनुषङ्गिक है- **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः** इत्यादि श्रुति तथा 'कर्मयोग' और 'ज्ञानयोग' की प्रतिपादिका गीता का यही तात्पर्य है। अतः मनुष्य योनि से भिन्न वृक्ष आदिक योनियों को (अभ्युपगमवाद से कहा जाता है-'लेखक') 'कर्मयोनि' में नहीं मान सकते, तथा कर्म के साधन कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रियों के न होने से भी वृक्ष को कर्मयोनि में नहीं मान सकते। भोगयोनि वाले वृक्षादिक नहीं हो सकते। क्योंकि भोग का साधन कोई इन्द्रिय वृक्षों के पास नहीं है तथा हर दो (कर्म तथा भोग रूप) योनियों में होने वाले अवस्थाकृत-लक्षण वृक्षों में नहीं घट सकते, क्योंकि हर एक योनि में जीव की (जागरित, स्वप्न तथा सुषुप्ति-रूप) तीन अवस्थाएँ होती है। यदि वृक्षों में जीव मान लिया जाए तो बताना चाहिए कि जागरित आदि तीनों अवस्थाएँ क्योंकर, इनमें घट सकती हैं? **इन्द्रियैरर्थोपलब्धिर्जागरणम्** जिस अवस्था में इन्द्रियों द्वारा पदार्थों का अनुभव होता है उस अवस्था को 'जागरण' कहते हैं-सो वृक्षों में इन्द्रियों के न होने से जागरणाभाव सुतरां सिद्ध है जब जागरित-अवस्था ही नहीं

तो 'स्वप्न' अवस्था भी नहीं हो सकती-**जागरितसंस्कारजः प्रत्ययः सविषयः स्वप्नः जागरित**-अवस्था के संस्कारों से जन्य जो विषयों के सहित प्रतीति (ज्ञान) होती है, उसे 'स्वप्न' कहते हैं। जब 'जागरित' ही नहीं तो बेचारे पेड़, स्वप्न क्या देखेंगे? एवं 'सुषुप्ति' जागरित आदि की अपेक्षा से होती है- जहाँ जागरित आदि अवस्थाएँ नहीं होती, वहाँ 'सुषुप्ति' भी नहीं हो सकती। यदि कहो कि वृक्षादि 'समाधि' अवस्था में हैं तो 'समाधि' 'वीतराग' आदि सिद्ध पुरुषों में होती है, पशु, वृक्षादि में नहीं होती। अतः वृक्षों में जीवों की सी कोई बात पाई ही नहीं जाती और न कोई ऐसा प्रमाण है कि जीव अपने किसी प्रकार के कर्मों को भोगने के लिए वृक्षादि का जन्म लेता है। 'मनुस्मृति' अकेले प्रमाण नहीं हो सकती। श्रुत्यनुसारिणी स्मृति ही मान्य हुआ करती है। कोई ऐसी श्रुति बतानी चाहिए जिसमें यह कहा गया हो कि जीव कर्मों के फलों को भोगने के लिए वृक्षों में जन्म लेता है तथा 'वैशेषिक दर्शन' में स्थावरों को 'भोग्य' अर्थात् 'विषय' माना है- विषय-भोग्य, 'साधन' अर्थात् 'शरीर' नहीं हो सकते।

वेदान्त-दर्शन में **अन्याधिष्ठितेषु** सूत्र का अभिप्राय अधिष्ठातृरूप 'अभिमानी जीव' से नहीं है, किन्तु जैसे बाग का स्वामी 'अधिष्ठाता' कहलाता है, वृक्षादि के अधिष्ठाता=स्वामी और लोग होते हैं और उनके वे (वृक्षादि) भोग्य होते हैं, ऐसे ही अन्य लोगों से अधिष्ठित (मक़बूजा) व्रीहि आदि में जीवों का सम्बन्ध मात्र होता है, अर्थात् वृक्षों में या वृक्षों पर अनुशायी (!) (बसेरा लेने वाले पक्षी, कीट आदि) ही होते हैं- 'अभिमानी जीव' नहीं-अतः वृक्षों में जीव का होना वेदान्तदर्शन से सिद्ध नहीं हो सकता, और यदि वृक्षों में जीव हो भी, तो उस दशा में वृक्ष 'चेतन' होंगे और चेतन (मनुष्यादि) के चेतन (धानादि) भोग्य होंगे, किन्तु ऐसा हो नहीं सकता, क्योंकि चेतन का भोग्य चेतन ही संसार में दृष्टिगोचर नहीं होता-तथा उन (धानादि) के खाने में हिंसा भी होगी।

'द्वा सुपर्णा...' इत्यादि श्रुति में रूपक है, चेतन जो जीव और परमात्मा हैं उनकी समता चेतन पक्षियों से है, जड़ प्रकृति की समता 'वृक्ष' से है, अतः 'वृक्ष' भी जड़ हैं-अन्यथा कुछ भी समता न होने से 'रूपक' ही ठीक न हो सकेगा। क्योंकि प्रकृति की और किसी धर्म द्वारा वृक्ष के साथ समता नहीं हो सकती। और स्वामी तुलसीराम जी (मेरठ निवासी) ने भी यही अर्थ किया है, अतः इस श्रुति से भी यह स्पष्ट हुआ कि वृक्ष 'जड़' हैं। अतएव श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश (१९४ पृष्ठ में) **'कुर्वन्नेवेह कर्माणि'**-इत्यादि मन्त्र के अर्थ में, अप्राणियों के उदाहरण में वृक्षों को लिखा है- तथापि

देखो सृष्टि के बीच में जितने प्राणी अथवा अप्राणी हैं, वे सब अपने-अपने कर्म और यत्न करते ही रहते हैं- जैसे पिपीलिका आदि सदा प्रयत्न करते, पृथिवी आदि सदा घूमते और वृक्ष आदि बढ़ते-घटते रहते हैं...इत्यादि

अतः श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज वृक्षों को अप्राणी मानते थे। शेष सत्यार्थ-प्रकाश का जो प्रकरण आप अपनी ओर से पेश करते हैं उसमें 'मिलावट' है, आपने विचार नहीं किया- क्योंकि हम क्रम आदि का टूटना तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के प्रमाण से विरोध, इत्यादि कारण स्पष्ट कह चुके हैं। अतः आपके प्रमाणरूप से दिए गए सत्यार्थ प्रकाश के प्रकरण में 'वृक्षादि' पद मिलाया गया है, और यही प्रकरण जहाँ 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में आया है वहाँ भी मिलावट है, देखो-ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृष्ट २०५ में- (सं. १९३४ की छपी हुई-लाजरस कम्पनी बनारस का प्रेस)।

द्वे सृती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च।।६।।

य. अ. १९ मन्त्र ४७, इस मन्त्र के भाष्य में लिखते हैं।

(द्वे सृती.) अस्मिन् संसारे पापपुण्यफलोपभोगाय द्वौ मार्गौ स्तः। एकः पितॄणां ज्ञानिनां देवानां विदुषां च, द्वितीयः (मर्त्यानाम्) विद्या-विज्ञानरहितानां मनुष्याणाम् इत्यादि।

इस भाष्य के हिन्दी अनुवाद में पण्डित भीमसेन जी ने 'दूसरा नीचमति से पशु-पक्षी, कीट, पतंग वृक्ष आदि का होना'-इत्यादि सब मिला दिया है, जिसका मूलभाष्य में नामोनिशान नहीं है, और 'सत्यार्थ प्रकाश' तथा यहाँ, दोनों स्थानों में पण्डित भीमसेन जी लिखने वाले हैं, संस्कृत श्री स्वामी जी की है। अतः आर्यभाषा में उभयत्र पण्डित

भीमसेन जी की की गई मिलावट है, अतएव अमान्य है।

श्री पंडित गणपति शर्मा जी-

'अथर्ववेद' के दोनो मन्त्रों के विषय में स्वामीजी ने कोई नया उत्तर नहीं दिया, वही पुराना उत्तर है। मन्त्र में सामान्य प्राणन् का कोई प्रकरण नहीं है, क्योंकि इस विषय में भाष्य आदि का कोई प्रमाण नहीं दिया गया तथा अन्यान्य हेतु, जो इन मन्त्रों के अर्थों के खण्डन में वाद-प्रवाह में आये उन सबका परिहार कर चुका हूँ। स्वामी जी को बताना चाहिए कि क्यों मुख्य अर्थ का परित्याग कर गौण अर्थ का आलम्बन किया जाय?

तथा जहाँ-जहाँ आप 'योनि' मानते हैं वहाँ-वहाँ जागरण आदि दशाओं की सत्ता आवश्यक मानते हैं- यह विचार आपका ठीक नहीं है, क्योंकि जागरण अवस्था उस दशा का नाम है जिस दशा में कि जीव को इन्द्रियों द्वारा पदार्थों का अनुभव होता है- सो हम आपसे पूछते हैं कि जन्म से अन्धा, बहरा या मूक (गूंगा) पुरुष अपनी आंख या कान या वाणी से किसी दशा में कोई भी अनुभव या कर्म नहीं करता, अर्थात् उस बहरे या अन्धे मनुष्य के लिए कर्ण या नेत्रकृत जागरण अवस्था कभी भी नहीं होती, एवं स्वप्न और सुषुप्ति भी तत्तदिन्द्रियविषयक नहीं होती, क्योंकि बहरा या अन्धा मनुष्य स्वप्न में कभी भी श्रवण या दर्शन रूप व्यापार नहीं करता, यह अनुभूत है। अत: जब पुरुषों के एक या दो इन्द्रियों के विषय में जागृत आदि अवस्थाओं का अभाव स्पष्ट है तो वृक्षों में भी यदि सब इन्द्रियों के न होने से, समस्त इन्द्रियविषयक जागरण आदि का अभाव हो गया तो आपको क्या आपत्ति है? जब एक योनि में, एक या दो इन्द्रिय विषयक जागरण आदि अवस्थाओं के न होने पर भी आपको वहाँ जीव की सत्ता से इन्कार नहीं, तो यदि किसी योनि में समस्त इन्द्रियों के न होने से, सकल इन्द्रिय विषयक जागरण आदि का अभाव हो जाय तो वहाँ भी आपको जीव की सत्ता से मुन्किर नहीं होना चाहिए? उस अभाव से आप क्योंकर वृक्षों में जीवाभाव सिद्ध कर सकते हैं? यदि एक स्थान में आप जागरण आदि के अभाव को जीवाभाव का हेतु (व्यतिरेकी) मानेंगे तो आपको अन्यत्र (मनुष्य आदि योनि में) भी (कतिपय-इन्द्रियाभावहेतुक)जागरण आदि के अभाव से, उतने अंश में जीवाभाव अवश्य मानना पड़ेगा-ऐसी दशा में आपका 'जीव' विकल हो जाएगा? अतएव 'अनित्य' भी आपको मानना पड़ेगा।

यदि आप यह कहें कि 'जीव के सुख-दु:ख भोगने के साधन इन्द्रियाँ ही तो हैं' जहाँ जीव के साथ वे इन्द्रियाँ ही नहीं हैं वहाँ सुख-दु:ख का भोग नहीं हो सकता। जहाँ सुख-दु:ख का भोग ही नहीं हो सकता, वहाँ जन्म लेकर जीव करेगा क्या?

सो इसके उत्तर में निवेदन है कि आपका यह विचार ठीक नहीं, आप यह समझे बैठे हैं कि 'जीवात्मा इन्द्रियों के बिना सुख-दु:ख नहीं भोग सकता' किन्तु यह ख्याल ठीक नहीं है-क्योंकि जीवात्मा स्वप्न दशा में इन्द्रिय आदि सब प्रकार की सामग्री के अभाव में भी उसी प्रकार सुख-दु:ख का अनुभव करता है, जिस प्रकार कि जागृति काल में इन्द्रिय आदि सब सामग्री की उपस्थिति में। जागरणकाल में होने वाली स्वप्नविषयिका स्मृति, इस बात की साक्षिका है एवं सुषुप्ति काल में समस्त इन्द्रियों का अभाव होता है, उस दशा में महापातकी से लेकर महापुण्यात्मा तक, महामूढ़ से लेकर महाश्रोत्रिय तक, महादरिद्र से चक्रवर्ती सम्राट तक, बच्चे से बूढ़े तक, कीट पतंगादि से तत्त्ववेत्ता महर्षि तक सब एकाकार वृत्ति में, एकसी ही दशा में हो जाते हैं और उस दशा के विषय में सबका यह (स्मृति रूप) अनुभव है कि-

सुखमहमस्वाप्सं न किं चिदवेदिषमिति-

''मैं सुखपूर्वक सोया और मुझे कुछ सुध नहीं रही'' सो महाराज! सुषुप्ति काल में सकल इन्द्रियों के अभाव में भी जैसे जीवात्मा सुख आदि को अनुभव कर लेता है इसी प्रकार तमाम इन्द्रियों के न होने पर भी वृक्ष सुख-दु:ख आदि को अनुभव कर सकते हैं। अतएव श्री मनु महाराज वृक्षों को अन्त:संज्ञ, कहते हैं, अत: यह कहना कि इन्द्रिय आदि के न होने से तथा जागृति आदि के न होने से वृक्षों में जीव नहीं है, यह बात नितांत असार है।

और सुनिए, आप यह कहते हैं कि 'जागृत, स्वप्न तथा सुषुप्ति' रूप जीव की तीन अवस्थायें होती हैं, पर आपका यह कहना भी ठीक नहीं है। इन अवस्थाओं के अतिरिक्त, जीव की मूर्च्छा' नामिका दशा भी देखी जाती

है। मूर्च्छा को जागरित दशा में नहीं मान सकते क्योंकि जागरणकाल के समान मूर्च्छावस्था में इन्द्रियों से विषयों का कोई अनुभव नहीं होता। मूर्च्छित मनुष्य जब होश में आता है तो कहता है कि मैं इतने समय अन्धकार में अर्थात् बिल्कुल अज्ञानावस्था में पड़ा हुआ था, मुझे कुछ सुधबुध न थी तथा जागरण काल में मनुष्य अपने शरीर को थामे रहता है, किन्तु मूर्च्छित महाशय का देह भूमि पर धम से गिर पड़ता है। अतः जागरण दशा में ही मनुष्य की मूर्च्छावस्था को मानना ठीक नहीं है एवं स्वप्न में भी 'मूर्च्छा' दशा को नहीं मान सकते, तथा सुषुप्ति अवस्था में भी मूर्च्छा को नहीं मान सकते क्योंकि सुषुप्त तथा मूर्च्छित मनुष्य में बहुत भेद है। **कारणभेद**-सुषुप्ति अवस्था थकान से पैदा होती है, मूर्च्छा प्रबल आघात या विषाद से उत्पन्न होती है। **फलभेद** -सोने से थकान दूर होती है शरीर प्रकृतिस्थ हो जाता है, मूर्च्छा शरीरपात के लिए है-यद्यपि मूर्च्छा से अवश्य ही मृत्यु नहीं हो जाती तथापि बिना मूर्च्छा के मृत्यु नहीं होती। मृत्युकाल में मूर्च्छा अवश्य आ जाती है अर्थात् मूर्च्छा मृत्यु का द्वार है।

स्वरूप भेद- सोया हुआ पुरुष लगातार एक सी श्वास लेता है, उसका मुख प्रसन्न होता है, आँखें बन्द रहती हैं। हाथ से छूने या बुलाने मात्र से उठ बैठता है, होश में आ जाता है, परन्तु मूर्च्छित पुरुष मूर्च्छावस्था में एक सी साँस नहीं लेता, कभी उसका साँस बिल्कुल बन्द हो जाता है। कभी वेग से चलने लगता है कभी धीरे-धीरे। आँखों को फाड़े रखता है या वे फटी हुई रहती हैं। कभी-कभी शरीर में कपकपी होने लगती है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मुख पीला (फक पड़ जाता है) तथा अनेक भयानक लक्षण दिखाई देते रहते है, उसको चाहे सोटों से पीटो तो भी नहीं उठता, होश में नहीं आता। सोये हुए पुरुष को उठाने के लिए कोई भी वैद्य के पास भागा नहीं जाता, मूर्च्छित के लिए तो वैद्य को बुलाये बिना कल (चैन) नहीं पड़ती, इत्यादि अनेक कारणों से सुषुप्ति अवस्था में भी मूर्च्छा को नहीं मान सकते। अतः 'मूर्च्छा' एक स्वतन्त्र अवस्था है जो 'आयुर्वेद' में प्रसिद्ध है। समस्त जगत् में प्रख्यात है। सो महाराज! मूर्च्छित दशा में जीव के साथ कोई भी इन्द्रिय नहीं होती और मूर्च्छित पुरुष अपनी मूर्च्छा अवस्था से छूटकर कहता है कि-

अन्धेतमस्यहमेतावन्तं कालं प्रक्षिप्तोऽभूवं न किञ्चिन्मया चेतितम्,- दुखमस्वाप्सं गुरूणि मे गात्राणि भ्रमत्यनव, स्थितं मे मनः...इत्यादि

यह अनुभव बिना इन्द्रियों के कैसे हो गया? अतः स्वप्न, सुषुप्ति तथा मूर्च्छावस्था में जैसे बिना इन्द्रिय आदि के सुख-दुःख का अनुभव हो जाता है, इसी प्रकार 'वृक्ष' भी इन्द्रियों के बिना सुख-दुःख आदि को भोग सकते हैं। अतएव मनु महाराज साफ लिखते हैं कि-

अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःख-समन्विताः।

यदि कहा जाय कि वृक्ष योनि बुरे कर्मों का फल होने से सुषुप्ति के सदृश क्यों हुई? सुषुप्ति में तो सुख होता है बुरे कर्मों का फल तो सर्वथा दुःखरूप होना चाहिए? तो हम आपसे पूछते हैं कि पापी को निद्रा क्यों आती है? निद्रा में सुख होता है-पापी उसका भागी क्योंकर हुआ? सो जैसे पापी को निद्रा में भगवान् करुणैकसिन्धु सुख देते हैं ऐसे ही वृक्षों को परमात्मा यदि सुख देते हैं तो क्या बुरा करते हैं? एवं प्रलयकाल में पापी को दुःखाभाव क्यों होता है?

अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात् सूत्र पर शारीरक भाष्य को आपने अपने पक्ष की पुष्टि में धरा था, वह उल्टा आपके लिए हानिकर हुआ? जब आप कोई अन्य उपाय न पाकर सूत्र के मनमाने अर्थ करने लगे, और 'अधिष्ठित' पद से बाग के अधिष्ठाता की सूझी, पर आपकी यह तर्कणा केवल असम्बद्ध है। अच्छी बात है चलिए! हाँ, क्या कहा? चेतन का चेतन भोग्य या 'भोक्ता' नहीं हो सकता। भला क्यों! लोक में नजर नहीं आता? वाह! इतनी सी बात थी। आइये! हम आपको दिखाते हैं-

मनुष्य का भोग्य बैल आदि होते हैं-अर्थात् मनुष्य उनसे काम लेते हैं। **''विशोऽन्नं राज्ञाम् नार्य्यो भोग्याः पुंसाम्- ते च तासाम्''** वैश्य या प्रजा के लोग राजाओं का भोग्य होते हैं। यह बात लोक में आबाल-गोपाल अजाविपाल (पर्यन्त) प्रसिद्ध है। अतः 'विषय' पद से जड़ ही भोग्य माने जायेंगे, यह कुछ नहीं। **अन्याधिष्ठितेषु** सूत्र का प्रामाणिक अर्थ किसी आचार्य आदि का किया हुआ लाइए-आप अपना अर्थ प्रमाणतया पेश नहीं कर सकते।

'द्वा सुपर्णा' मन्त्र में वृक्ष, का प्रकृति के साथ जोड़-तोड़ लगाकर, 'जड़ता की समता' के बल पर आप ललकारते हैं कि 'रूपक' नहीं बन सकता! पर महाराज! तभी तो जब आप मनमानी करते हैं! आचार्यों के अर्थ से अकारण बैर! उस पर 'रूपक' बन नहीं सकता! सबर कीजिए, बन जाएगा पहले ठीक अर्थ सुनिए, अलंकार भी हो जाएगा।

'द्वा सुपर्णा' का अर्थ है कि जैसे दो पक्षी पेड़ पर बैठे हों, एक फल खाता हो और दूसरा केवल उसे देखता हो, ऐसे ही (पक्षिस्थानीय) जीव और परमात्मा, 'वृक्षस्थानीय' देह पर बैठे हैं और 'जीव' देह में होने वाले (फलस्थानीय)सुख-दु:ख को (खाता है) भोगता है और परमात्मा केवल द्रष्टामात्र है-इत्यादि।

सो जैसे पक्षियों का आधार 'वृक्ष' होता है और उसे फल भोग्य होते हैं, वैसे ही जीवात्मा तथा परमात्मा का आधार रूप 'देह' है-यद्यपि परमात्मा सर्वव्यापी और स्वत: प्रतिष्ठित है, वह किसी के आधार पर नहीं रहता, तथापि यह शरीर परमात्मा का उपलब्धि स्थान है, इसमें ही परमात्मा के दर्शन होते हैं, अत: कल्पित-गौण आधाराधेयत्व भाव देह तथा परमात्मा का मानकर, श्रुति देह को परमात्मा का आधार कहती है एवं जीवात्मा शरीर में आत्माभिनिवेशता के कारण सुख-दु:ख का भोक्ता है ही। अत: उपमान और उपमेय का परस्पर आधाराधेय भावात्मक सम्बन्ध मानकर श्लिष्ट एकता सुतरां उपपन्न हैं और आप प्रात:काल के अपने तृतीय भाषण में **द्वा सुपर्णेत्यादि श्रुति** में 'वृक्ष' शब्द का अर्थ शरीर मान भी चुके हैं, पर अब अपने कथन के प्रतिकूल, आप वृक्ष के मुकाबिल असम्बद्ध प्रकृति को लाते हैं और जड़-चेतन की जुगल जोड़ी अपने सामने बिठाने का यत्न करते हैं। इसी प्रकार यदि आप समस्त धर्मों को मिलाने का प्रयत्न करेंगे तो दृष्टान्त दार्ष्टान्तिक, उपमानोपमेय भाव का सर्वथा विलोप हो जाएगा। अत: जैसे 'वृक्ष' पक्षियों का आधार है वैसे ही जीवात्मा तथा परमात्मा का आधार देह है- आधारता की अपेक्षा से रूपकालंकार ठीक हो सकता है, यह बात वर्णन कर चुका हूँ और आपको भी, प्रकृति (वृक्षस्थानीया) मानकर यह 'आधारता' अवश्य स्वीकार करनी पड़ेगी, इसलिए 'आधारता' पर ही सन्तोष करना ठीक है-यदि आप आगे 'जड़ता' आदि धर्मों को मिलाने लगेंगे-तो हम-शाखा, पत्ते, फूल, जड़ें तथा परिमाण आदि जो कुछ भी वृक्ष में दिखाई देगा, प्रकृति के साथ मिलाना आरम्भ करेंगे और उधर पक्षियों के पंख, चोंच, पंजे, अण्डे, बच्चे, घोंसला, जीवादि के साथ सब मिलाने पर बाध्य करेंगे, पर आप नहीं मिला सकेंगे-अत: 'आधारता' पर ही सब्र करना ठीक है। अन्यथा बताइए, समान प्रकरण की 'ऋतं पिबन्तौ' 'श्रुति' के, **'गुहां प्रविष्टौ'** में ये 'गुहा' पद से प्रकृति की क्या समता होगी? अत: शास्त्र के स्वकपोलकल्पित अर्थों को छोड़ कर किसी प्रामाणिक अर्थ के बल पर बात कहिए-आप अपना ही अर्थ प्रमाणतया पेश नहीं कर सकते। अत: प्रकृति जड़ है 'वृक्ष' भी जड़ हैं, यह बात सर्वथा निराधार है, असमञ्जस है, एवं जो प्रकरण हमने **''ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे। छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेता:, ऋतं, अवश्यं भाव कर्मफलं, पिबन्तौ भुञ्जानौ, सुकृतस्य कर्मणो, लोके कायदेहे परस्य ब्रह्मणऽर्धस्थानमर्हतीति परार्धं हृदयं परमं श्रेष्ठं तस्मिन्या गुहा तमोरूपा बुद्धिरूपा वा तां छाया प्रविष्टौ स्थितौ छायातपनत् मिथो संबद्धौ तौ च ब्रह्मविद: कर्मिण: वदन्ति। त्रिर्नाचिकेतोऽग्निचितो यैस्ते त्रिणाचिकेता ते वदन्तीत्यर्थ:। नाचिकेत वाक्यानामध्ययनं तदर्थज्ञानं तदनुष्ठानं चेति त्रित्वं बोध्यम्''** छान्दोग्योपनिषत् का पेश किया, उसका कोई उत्तर नहीं दिया गया।

तथा **'परिभाषेन्दु शेखर'** की **सर्वोद्वन्द्वो विभाषयैकवद् भवति**- ३४ वीं परिभाषा के व्याख्यान में **श्री नागोजी** भट्ट लिखते हैं-

तिष्यपुनर्वस्वोरितिसूत्रस्थं बहुवचनस्येतिग्रहणमस्या ज्ञापकं तद्धीदं तिष्यपुनर्वस्वित्यत्र तद्व्यावृत्यर्थम् नचैवमप्यत्र जातिरप्राणिनामिति नित्यैकवद्भावेन बहुवचनाभावादिदं सूत्रं व्यर्थमिति वाच्यम्। आपोमय: प्राणइति श्रुतेरद्भीर्विनाग्लायमान प्राणानामेव प्राणित्वात्-स्पष्टच्चेदं तिष्यपुनर्वस्वोरितिसूत्रे भाष्ये।

इस परिभाषा में श्रीमन्महामहोपाध्याय श्री नागो जी भट्ट **'आपोमय: प्राण:'** इस श्रुति का प्रमाण देकर, प्राण का लक्षण करते हैं कि **अद्भिर्विनाग्लायमानत्वं प्राणत्वम्**

जो जल के बिना मुर्झा जाय या नष्ट हो जाय, उन्हें प्राण कहते हैं, सो वृक्षों को यदि जल न मिले तो सूख जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं अत: वे प्राणी हैं। प्राण बिना जीव के नहीं रह सकते **अथैनं क्रामन्तं सर्वे प्राण उत्क्रामन्ति** और **नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम्** तथा **जानपदकुंड** इत्यादि सूत्रस्थ 'नील' शब्द पर **प्राणिति च वार्तिक में मुखनासासञ्चारी** वायु को प्राण माना है अत: **तिष्यपुनर्वस्वोरित्यादि** सूत्र से विरोध नहीं है। अब यह बात सिद्ध हुई कि श्रीमन्महामुनि श्री पतञ्जलि जी महाराज भी वृक्षों में अभिमानी जीव को मानते हैं।

सत्यार्थप्रकाश तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के विषय में आप जो जो कल्पनाएँ करते रहे हैं, उनका एक-एक करके खण्डन कर चुका हूँ। आप उसका कुछ परिहार नहीं करते-अत: स्वामी जी! श्री स्वामी दयानन्द जी के लेख से वृक्षों में अभिमानी जीव का अभाव आप किसी प्रकार सिद्ध नहीं कर सकते। '**द्वे सृति**' मन्त्र के प्रकरण को लेकर, जो आप पण्डित भीमसेन जी द्वारा की गई मिलावट बता रहे हैं -इसमें क्या प्रमाण है कि पण्डित भीमसेन ने मिलावट की है? ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा सत्यार्थप्रकाश में जो कुछ लेख है, वह अक्षरश: स्वामी जी का है, चाहे संस्कृत हो या आर्य भाषा हो। जब उनके नाम पर सब किताबें छपती हैं तो क्योंकर मान लिया जाय कि मिलावट है? जो श्री स्वामी दयानन्द महर्षि तमाम अवैदिक मन्त्रों के जाल का समूलोच्छेदन करने वाले थे, वे अपने रचित पुस्तकों में इतने गाफिल थे कि लेखक लोग जो चाहें मिला दें या निकाल दें। इस बात को कौन बुद्धिमान् मनुष्य मान लेगा। संस्कृत तथा आर्य भाषा में श्री स्वामी जी ही भाष्यकर्त्ता हैं-आवश्यक नहीं है कि जो अक्षर संस्कृत में लिखें वही हूबहू भाषा में लिखें। वे किसी स्थल में विशेष व्याख्यान की अपेक्षा से अधिक भी लिख सकते हैं तथा संस्कृत और आर्यभाषा के लेखक्रम भिन्न-भिन्न होने से नये ढंग पर भी बात लिखनी पड़ती है। हाँ, जो आप परस्पर विरोध दिखाते हैं उस सबका परिहार कर चुका हूँ। उसका प्रतिपरिहार आपके पास कुछ नहीं है। अत: ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा सत्यार्थप्रकाश के विवाद प्रसाद को किसी नई तर्क भूमिका पर उठाइये। बार-बार वही बात आपके पक्ष को थोथा किये जा रही है।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी-

'**द्वा सुपर्णा**' मन्त्र में जीव-ब्रह्म दो पक्षियों के समान हैं-क्योंकि चेतनता समान धर्म से पक्षी तथा जीव ब्रह्म युक्त हैं-उधर वृक्ष तथा प्रकृति के जड़ होने से समता है अत: 'वृक्ष' जड़ है। क्योंकि वेद 'पुनरुक्ति' आदि दोषों से रहित हैं, यदि यहाँ वृक्ष को जड़ न मानेंगे तो 'प्रकृति' से समता न हो सकेगी अत: 'जाति दोष' वेद में आयेगा उसकी निवृत्ति के लिए वृक्षों को जड़ मानना चाहिए यह बात युक्तियुक्त भी है अन्यथा चेतनता की प्रतीति के न होने पर भी यदि आप वृक्षों में जीव मानेंगे तो मेज आदि वस्तुओं में भी 'जीव' मानना पड़ेगा।

मूर्च्छा नाम मनसो विचलितावस्था - मन की विचलितावस्था का नाम मूर्च्छा है-वृक्षों में मूर्च्छा नहीं है-क्योंकि मूर्च्छा जागरण आदि की अपेक्षा से होती है-जब जागरण आदि अवस्थाएँ ही वृक्षों में नहीं तो मूर्च्छा भी नहीं हो सकती। जाग्रत अवस्था से पृथक् मूर्च्छा कोई अवस्था नहीं है। यदि मूर्च्छा पृथक् कोई अवस्था होती तो जागरणादि के समान सब मनुष्यादिकों में नियमानुसार और प्राय: प्रतिदिन होती-परन्तु ऐसा है नहीं- और वीतराग पुरुषों में तो मूर्च्छा होती नहीं-अत: वृक्षों में जब योनि ही नहीं तो मूर्च्छा कैसे हो सकती है? अतएव मन की विचलितावस्था रूप मूर्च्छा भी वृक्षों में नहीं हो सकती एवं वैशेषिकदर्शन में वृक्षों को 'विषय' अर्थात् भोग्य माना है- भोग्य भोक्ता नहीं हो सकते।

सत्यार्थप्रकाश में, **कुर्वन्नेवेह कर्माणि**...मन्त्र के अर्थ में वृक्षों की गणना जड़ों में की है-

'भोग्य' नाम चेतनावसान का है सो चेतनता के न होने से भोग्य है। भोक्ता नहीं हो सकते। भोग्य ही भोक्ता नहीं हो सकता। 'आत्माश्रय' दोष होगा-आप ही अपने कन्धे पर कोई कैसे बैठ सकता है? और न अपेक्षाकृत हो सकते हैं-क्योंकि वृक्षों को भोक्ता मानकर किसी अन्यपुरुष आदि का भोग्य मानने से 'जीव-हिंसा' जायज माननी पड़ेगी। जहाँ यह कहा जाता है कि न्यून बुद्धि वाले अधिक बुद्धि वालों के भोग्य होते हैं, वहाँ गौणतया भोग्य से अभिप्राय है, क्योंकि सेवा आदि कराते हैं-क्या स्वामी, दास को मुख्यतया

ही निगल जाता है? जैसे कि-

''अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि, हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम्। प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात्क्रविष्णुर्विचिनोतु वृक्णम्''। (ऋ. १०-८७-५) में चिदवसान भोग्य (तथा उपचार प्रायेण) से तात्पर्य यह है। क्योंकि 'क्रव्याद' उस अग्नि को कहते हैं जो मुरदे को खा जाता है- अर्थात् जो शव को जला देता है क्योंकि मुख्यतया हमारे समान आग मुरदे को नहीं खाती।

श्री पंडित गणपति शर्मा जी

अथर्ववेद के दो मन्त्र तथा छान्दोग्योपनिषत् के प्रमाण से यह बात कह चुका हूँ कि वृक्षों में जीव है। **'द्वा सुपर्णा'** इत्यादि श्रुति के यदि आप प्रामाणिक अर्थ नहीं मानते और स्वकल्पित अर्थों पर ही जिद करेंगे तो, आपका अर्थ ही ठीक है-इसे हम क्योंकर मान लें? मैं कहता हूं कि यहाँ 'तोता और मैना' रूप दो पक्षियों से अभिप्राय है- आप इसका खण्डन कीजिए? बिना किसी प्रकरण आदि के अर्थ का निर्णय नहीं हो सकता, आप प्रकरणानुसार अर्थ की संगति ठीक कीजिये और इस अर्थ में हेतु दीजिए- केवल पक्ष-घोषणा से पक्षसिद्धि नहीं हो सकती।

आप कहते हैं कि 'वृक्षों में जीव नहीं है क्योंकि शास्त्र आदि का प्रमाण नहीं है अतः मूर्च्छा भी नहीं हो सकती'- मैं पूछता हूँ-क्या अथर्ववेद और छान्दोग्य और मनुस्मृति शास्त्र नहीं है? क्या आपने इन प्रमाणों का कुछ खण्डन किया? यदि नहीं तो फिर क्योंकर आप कहते हैं कि 'शास्त्र का प्रमाण नहीं है।' आप मूर्च्छा के लिए जागरण आदि की अपेक्षा को आवश्यक बतलाते हैं-परन्तु यह ठीक नहीं, क्योंकि वृक्षों में जन्म से ही मूर्च्छा है वह एक जन्म-रोग के समान है। तथा 'मूर्च्छा' को आप जागरण अवस्था के अन्दर मानते हैं-अर्थात् जागरण अवस्था से भिन्न विशेष अवस्था उसे नहीं मानते, पर यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि जागरणकाल में इन्द्रियों से विषयों का ग्रहण होता है- 'मूर्च्छा' में नहीं होता। आपके पक्ष में कोई प्रमाण भी नहीं है-अतः मूर्च्छा का जागरण में अन्तर्भाव नहीं हो सकता।

तथा वृक्षों का सजीव होना हम शास्त्र से सिद्ध कर चुके हैं- और मूर्च्छा तो वृक्षों में स्पष्ट सी प्रतीत होती है। जब अन्धे या बहरे पुरुष में एक या दो इन्द्रिय विषयक-जागरणाद्यभाव साफ जाहिर है और अन्धे या बहरे में जीव के न होने में आपको कोई शिकायत नहीं होती, किन्तु जीव को आप मानते हैं, तो फिर वृक्षों में समस्त-इन्द्रियाभाव निमित्तक-जागरणाद्यभाव दशा में क्यों नहीं जीव को मानते?

यह कोई नियम नहीं है कि भोक्ता चेतन ही हो और भोग्य जड़ ही हो। देखिये स्वामी और सेवक दोनों चेतन हैं- पर भोक्ता और भोग्य हैं। शेर हरिणों को खाता है, यहाँ भी भोक्ता और भोग्य चेतन हैं। पुरुष अन्न को खाता है यहाँ भोक्ता चेतन और भोग्य जड़ है। मर्दुमखोर पेड़ मनुष्यों को खा जाते हैं यहाँ आपके मत से जड़ वृक्ष भी चेतन मनुष्य को खा जाते हैं। अतः आपके मतानुसार भोक्ता और भोग्य की व्यवस्था नहीं हो सकती।

शेष रहा कि यदि वृक्षों में जीव है तो उनके काटने से हिंसा होगी, यह ठीक नहीं क्योंकि **बाधनालक्षणो धर्मो हिंसा** होती है-वृक्षों को काटने से बाधा (पीड़ा) नहीं होती, यह बात प्रत्यक्ष है, देखो! अंगुली के कटने से सारे शरीर में दुःख होता है और अंगुली कटकर सूख जाती है अर्थात् जीते हुए शरीर से सम्बन्ध रखते समय जो बात अंगुली में होती है वह कटने पर नहीं रहती, किन्तु कली (कोरक-शिगूफा) को डण्डी से तोड़कर अलग धर दो, सायंकाल की तोड़ी हुई प्रातः तक खिल जायगी तथा पेड़ में कोई पीड़ा आदि की प्रतीति भी नहीं होती। यदि पीड़ा होती तो अन्य शाखाओं पर भी फूल न खिलते। अतः कटने पर वृक्षों में दुःख नहीं होता। दुःखाभाव से तात्पर्य वृक्षरूपी-शरीरनिमित्तक दुःखाभाव से ही है- **पूर्वजन्म दुष्कृतमनः सन्तापात्मकक्लेशः** तो होता ही है अतएव मनु जी ने **सुखदुःखसमन्विताः** कहा है।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी

वृक्ष को यदि योनि माना जायगा तो वह बुरे ही कर्मों का फल होंगी, यदि वृक्षों को उनके शरीर सम्बन्ध से कोई दुःख नहीं होगा तो पाप का फल वृक्षों को दुःख भी न हो सकेगा, अतः पाप का फल दुःख भी अवश्य आपको वृक्षों में मानना चाहिए-ऐसी दशा में वृक्षों को काटने से हिंसा अवश्य होगी। शास्त्रों से वृक्षों में जीव का बताना 'साध्यसम' है-

न हि साध्यसमो हेतुः सिद्धौ साध्यस्य युज्यते

– (गौड़पादीय.)

आप कहते हैं कि 'जीव' अविद्योपाध्युपहित है किन्तु यह ठीक नहीं, सब के मत में कार्य्योपाध्युपहित है। अतः वेदों में कार्योपाध्युपहित जीव माना गया है। अनुमान बिना दृष्टान्त के नहीं हो सकता–**अजाद्वै जायते यस्य दृष्टान्तस्तस्य नास्ति वै**–(गौड़पादीय.) किसी वृक्ष में जीव को पहले सिद्ध कर लीजिए–तब शास्त्र के प्रमाण से सुख–दुःख आदि का निर्णय कीजिये। जीव जैसे–जैसे कार्य करता है वैसे–वैसे शरीर को धारण करता है, इसमें कोई प्रमाण नहीं कि जीव किन्हीं कर्मों से वृक्षों में जन्म लेता है, तथा उनमें किसी ने आज तक मूर्च्छा नहीं देखी–प्रत्यक्ष आदि का अभाव इस विषय में स्पष्ट है। मूर्च्छा के होने का काल बताना चाहिए? रोग में वृद्धि तथा ह्रास भी तो होता है–मूर्छित मनुष्य में भी कभी मूर्च्छा बढ़ जाती है, कभी घट जाती है–वृक्षों में ऐसा कहां है? वृक्षों में मूर्च्छा की वृद्धि तथा न्यूनता में कोई प्रमाण देना चाहिए। संखिया मनुष्य को नहीं मारता किन्तु संखिया का खाना मारता है–वृक्ष नहीं मारता किन्तु वृक्ष से गिरना मारता है अतः 'जड़' भोक्ता नहीं हो सकता, भोग योनि के लिए नियम चाहिए।

मूर्च्छा कोई पृथक् दशा नहीं है–'**आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा**'–(गौड़पादीय.) जिस वस्तु का आदि और अन्त नहीं होता वह वर्तमान में भी नहीं होती– मूर्च्छा अपने काल से पहले न थी–किन्तु जागरणावस्था थी, स्वकाल के पश्चात् भी नहीं होती प्रत्युत जागरण अवस्था ही होती है, अतः आद्यन्त में जागरणावस्था के होने से मध्य में भी 'जागरण' अवस्था ही थी शेष रही। यह शंका कि यदि मध्य में भी 'जागरण' ही है तो अब के समान मूर्च्छा में ज्ञान (इन्द्रियजन्य) क्यों नहीं होता? सो साफ जाहिर है कि मन की 'चञ्चलता' में ज्ञान नहीं होता, मूर्च्छा में भी मन चञ्चल होता है अतएव ज्ञानाभाव है। यह नहीं कि जागरणाभाव के कारण ज्ञानाभाव हो गया, क्योंकि ऐसा प्रायः होता है कि जिस काल में मन पर कोई आभास नहीं होता तो 'मूर्च्छा' हो जाती है। शास्त्रों में 'मूर्च्छा' कोई अलग अवस्था नहीं मानी गई। आयुर्वेद में भी अवस्था नहीं मानी गई– 'रोग' माना गया है।

तथा वृक्षों में आप जन्म की मूर्च्छा बताते हैं? यह ठीक नहीं है क्योंकि जन्म काल में हर एक प्राणी जगता हुआ पैदा होता है–सोता हुआ या मूर्च्छित या स्वप्न दशा में कभी पैदा नहीं होता। यह बात सुस्पष्ट है फिर दृष्टान्ताभाव में आप अन्तःसंज्ञ, कैसे कह सकते हैं? पहले युक्ति द्वारा वृक्षों में जीव की सत्ता सिद्ध कर लो–तदनन्तर मनुस्मृति के 'अन्तःसंज्ञत्व' पर भी विचार हो लेगा–अन्यथा मनुस्मृति आदि 'साध्यसम' होने से किञ्चित्कर होंगे और संसार में वृक्षों में जीव के साथ व्याप्तिग्रह न होने से जीवाभाव सर्वसाधारण में प्रख्यात है। अतः वृक्षों में कोई जीव–जाव नहीं है। और असहाया मनुस्मृति कैसे प्रमाण मान ली जाय? क्योंकि वेदमूलकस्मृति ही प्रमाण हुआ करती है। स्मृतियों में मिलावट हो सकती है।

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी–

जिस प्रकार मनुष्यों में बाह्यबुद्धि होती है अर्थात् बाहर की ओर इन्द्रियों के व्यापार से प्रत्यक्षादि का ग्रहण जैसे मनुष्य आदि करते हैं, वैसे वृक्षों में नहीं किन्तु अन्तःकरण से सुख–दुःख को अनुभव करते हैं। अतः अन्तःसंज्ञ हैं, यह मनुस्मृति निर्मूल नहीं है। अथर्ववेद के दो मन्त्र तथा छान्दोग्योपनिषद् से वृक्षों में जीव का होना सिद्ध कर चुका हूँ तथा अन्तःसंज्ञता वेदानुकूल होने से (परतः) प्रमाण है, इस बात को श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज भी मानते हैं फिर भी आप युक्ति से सिद्ध हो तो शास्त्र को मानेंगे नहीं, तो शास्त्र साध्यसम ही रहेगा–इसके क्या मानी, ऐसा मानने से वेदादिशास्त्र प्रत्यक्षानुमानादि के अधीन होने के कारण स्वतः प्रमाण न रहेंगे। वेद–विरुद्ध आपका तर्क कुछ नहीं कर सकता, अतः वेदानुकूल तर्क हम कर रहे हैं–आपको वह माननीय होना चाहिए। अन्तःकरणोपाधि से कार्योपाधि अभिप्रेत है तथा प्रत्यक्ष ज्ञान में इन्द्रियजन्यत्व होने का नियम नहीं हैं। इन्द्रियभाव में परमात्मा को ज्ञान कैसे हो जाता है? तथा बेटे के जन्म की खुशी किसी इन्द्रिय का विषय नहीं है– पर प्रत्यक्ष अनुभूत है और सब किसी को होती है। अन्धेरे का प्रत्यक्ष बिना इन्द्रियों के कैसे हो जाता है। अन्धेरा भावरूप नहीं– क्योंकि प्रकाश के आने पर नहीं रहता,अभाव रूप भी नहीं–क्योंकि प्रतीत होता है, फिर आँख के अन्धे होने के कारण अन्धकार कैसे

प्रत्यक्ष हो जाता है तथा भारीपन किस इन्द्रिय से ग्रहण होता है। भारीपने को सभी अनुभव करते हैं अत: बिना इन्द्रियों के भी अनुभव हो सकता है-एवं भोक्ता-भोग्यादि की भी कोई व्यवस्था नहीं है, यह बात पहले स्पष्ट कह चुका हूँ। मूर्च्छा को जागरणावस्था नहीं मान सकते-'**आदावन्ते च**, इत्यादि सृष्टि के सम्बन्ध की बात है, यदि यही नियम है, तो सुषुप्ति भी जागरण है'-क्योंकि सुषुप्ति के आदि और अन्त में जागरण होता है-तो मध्य में भी जागरण होना चाहिए-एवं जागरण भी सुषुप्ति होना चाहिए यह क्या बात हुई? सृष्टि से पूर्व भी प्रलय था, अन्त को भी प्रलय होगा, अत: अब भी प्रलय है? इसे कौन मान लेगा? (श्रोतागणों में चारों और सन्नाटे का आलम...)

तथा मूर्च्छाकाल में मन विचलित नहीं होता, इसे सब जानते हैं। प्रत्युत् सुषुप्ति के समान विशेष बाह्य पदार्थों का ज्ञानाभाव होता है। 'क्लोरोफॉर्म' से मूर्च्छित कर तजुरबा किया जा सकता है-अत: मूर्च्छा में मन की चंचलता के विषय में कोई प्रमाण नहीं है-स्वतन्त्र तथा उच्छृंखल तर्कना को छोड़कर शास्त्रानुकूल तर्क कीजिए-'साध्यसम वेद हैं' इस बात पर विचार कीजिये-

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज-

जब आप वृक्षों को मूर्च्छित मानते हैं और मूर्च्छा दशा में ज्ञान का अभाव मानते हैं-तो वृक्षों को भी ज्ञान नहीं होना चाहिए, परन्तु आपके कथन में 'व्याघातदोष' है।

किसी वस्तु का प्रत्यक्षादि-अनुभव, अंत:करण तथा इन्द्रियों के बिना नहीं हो सकता। अन्धेरे का प्रत्यक्ष भी चक्षु से होता है-

यद्गुणो येनेन्द्रियेण गृह्यते तन्निष्ठाजातिस्तदभावश्च तेनैव गृह्यते

इस नियम से प्रकाशाभाव या तेजोऽभाव रूप अन्धेरा आँख से ही ग्रहण होता है- क्योंकि प्रकाश को नेत्र ही ग्रहण करता है। तथा मूर्च्छाकाल में मन चंचल ही होता है, क्योंकि मकान की छत से गिरते समय मन चंचल तथा विकल हो जाता है-अत: मूर्च्छा से पहले मन का चंचल होना अनुभवसिद्ध है, तथा मूर्च्छा के पश्चात् भी मन की विकलता स्पष्ट है-अत: यह सिद्ध हुआ कि मूर्च्छा काल में भी मन चंचल होता है। यह क्यों मान लें कि वृक्ष अन्त:करणोपाधि से युक्त हैं, इसमें क्या दलील है। युक्ति के बिना किसी बात का निर्णय नहीं हो सकता 'मद्याजी' गीता का अर्थ युक्ति के बिना कैसे निर्णीत हो सकेगा? मूर्च्छित वृक्ष अन्त: सुखादि को कैसे ग्रहण कर सकेगा? क्योंकि मूर्च्छा में आप ज्ञानाभाव मानते हैं। यही 'व्याघात' दोष है।

'हरक़ते-इरादी', चेतन का धर्म है- यदि वृक्षों में हरक़ते-इरादी (विशेष गति-इच्छापूर्वक प्रवृत्ति) हो तो वहाँ चेतन माना जा सकता है-परन्तु वृक्षों में केवल 'हरक़ते-इन्तजामी,' (सामान्यगति) ही पाई जाती है, अत: वृक्षों में जीव नहीं है। [भाष्याचार्य पण्डित हरनामदत्त शास्त्री जी ने कहा कि 'सामान्य बिना विशेष के हो नहीं सकता'।]

एक प्रकार की क्रिया सामान्यकारण की द्योतक है। यह वृक्षों में प्रसिद्ध है-अत: वृक्षों में हरक़ते-इन्तज़ामी है। हरक़ते-इरादी नहीं। अतएव वृक्ष जड़ हैं-क्योंकि ईश्वर की हरक़ते-इन्तज़ामी से उनके उत्पन्न होने, बढ़ने और फूल-फलकर सूख जाने का जैसा नियम बाँधा गया है उसी के अनुसार उनकी अवस्थाएं बदल-बदल कर रह जाती हैं-कोई ऐसी बात वृक्षों में नहीं पाई जाती जिससे यह निर्णय किया जा सके कि वृक्षों में हरक़ते-इरादी भी है, अत: वृक्ष जड़ हैं। दु:खादि स्वसंवेद्य हैं, औरों को क्या खबर कि अमुक पुरुष को दु:ख हो रहा है या नहीं 'जिस तन लागे सोई जाने'। यह बात सर्वसाधारण में प्रसिद्ध है-अत: 'वृक्षों को सुख-दु:ख होता है' इसमें क्या प्रमाण है?

श्री पंडित गणपति शर्मा जी

यदि मूर्च्छा काल में या मन की चंचलता में सुख या दु:ख का होना आवश्यक है-तो इसमें अनुभव का आकार आप बताएँ, मुझसे क्या पूछते हैं। मैं तो मूर्च्छा में (बाह्य) ज्ञान का अभाव मानता हूँ-ज्ञान आप मानते हैं, क्योंकि जागरणावस्था में ही मूर्च्छा का अन्तर्भाव करते हैं, प्रमाण उल्टा मुझसे मांगते हैं। जब आप मूर्च्छा में ज्ञान मानते हैं तो आपको बताना चाहिए कि मुझे? ऐसा पूछना आपका 'वदतोव्याघात' है और मैं जो मूर्च्छा में ज्ञान का अभाव मानता हूँ, वह विशेष ज्ञान का अभाव मानता हूँ-अर्थात् मूर्च्छित को बाह्येन्द्रियों से होने वाला ज्ञान नहीं होता, सामान्य ज्ञान तो होता ही है, क्योंकि मूर्च्छित पुरुष मूर्च्छा से छूटकर

कहता है कि **अन्धेतमस्येतावन्तम् कालं प्रक्षिप्तोऽभूवम्, न मया किंचिच्चेतितम्** इत्यादि स्मृति मूर्च्छाकाल के अनुभव की साधिका है। ऐसे ही वृक्षों को अनेक जन्मकृत-सुकृत दुष्कृतों के कारण से बहुत सन्ताप तथा सुखलव होता ही रहता है। वृक्षों को शरीर निमित्तक वेदना नहीं होती, यह बात युक्तिपूर्वक मैं पहले कह ही चुका हूं।

चेतन का लक्षण आप 'हरकते-इरादी' अर्थात् जो करने, न करने या अन्यथा करने में समर्थ हो, करते हैं- किन्तु यह ठीक नहीं है मुक्तावस्था में जीव जड़ है या चेतन? यदि जड़ मानोगे तो चेतन का जड़ होना असम्भव है-यदि चेतन है तो बताइये उसकी 'हरकते इरादी' मुक्तावस्था में क्या काम करती है? यदि केवल सुख भोगता है तो सुख को तो आप स्वसंवेद्य मानते हैं, परसंवेद्य तो सुख आपके मत में हो ही नहीं सकता, फिर क्या दलील है कि मुक्ति में सुख होता है?

हम तो यह मानते हैं कि स्वसंवेद्य भी चेष्टादि से परसंवेद्य हो जाता है। एक पुरुष दूसरे की ज्ञान इच्छादि को जान जाता है। योगी तो दूसरे के मनोगत को दूर से जान जाते हैं-संसार में कोई बात भी केवल परसंवेद्य नहीं रह सकती, जब 'तिनके' से लेकर ईश्वर तक के ज्ञान से मुक्ति होती है तो स्व-परसंवेद्य का क्या कहना? **एकेन विज्ञातेन सर्वमिदं विज्ञातं स्यात्**। एक परमात्मा के ज्ञान से जैसे सबका ज्ञान हो जाता है, ऐसे ही परसंवेद्य, स्वसंवेद्य हो जाता है। वेदविरुद्ध कणाद का प्रमाण कुछ नहीं कर सकता, हमने वेदों के तथा वेदानुकूल अन्यान्य प्रमाण दिये, उनका कुछ उत्तर आपने नहीं दिया।

आर्षं धर्म्मोपदेशञ्च वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः।।

(मनुस्मृति)

आस्तिकों के यहाँ वेदशास्त्रविरुद्ध किसी का वचन प्रमाण नहीं माना जा सकता, शास्त्रविरुद्ध तर्क हम प्रमाण नहीं मानेंगे **तर्काप्रतिष्ठानात्** भोक्तृ-भोग्य-विषयक-व्यवस्था में जो विचार हमने दिए थे, उनका कुछ उत्तर नहीं हैं, मूर्च्छाकाल में मैं मनुष्य में दुःख मानता हूँ, आपको दुःख नहीं तो सुख ही मानना चाहिए। अन्यथा उभयाभाव में मूर्च्छित मनुष्य जड़वत् (पाषाण सा) आपको मानना होगा?

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी

'पारिभाषेन्दु' आदि के प्रमाण ठीक नहीं हैं, क्योंकि नागेश ऋषि नहीं थे। 'शेखर' तो काकभाषा है। छान्दोग्य के प्रमाण में 'वृक्ष' शब्द का अर्थ 'शरीर' है। 'शाखा' से अभिप्राय 'अवयव' से है-क्योंकि वहाँ 'म्रियते' पद आया है- 'मरना' शब्द का प्रयोग वृक्षों के लिए नहीं आता। कालिदास तथा मल्लिनाथ का प्रयोग प्रमाण नहीं हो सकता **'कवयः किन्न जल्पन्ति'**? (इस वाक्य के सुनते ही सभा में हंसी...) लौकिक प्रयोग शास्त्र के अर्थ करने में निर्णायक नहीं हो सकते। किसी आर्ष प्रमाण से सिद्ध कीजिए।

'अथर्ववेद' के दोनो मन्त्रों का पण्डित भीमसेन का किया अर्थ प्रमाण नहीं माना जा सकता। किसी ऋषि का भाष्य उन मन्त्रों पर पेश कीजिए तो विचार किया जा सकता है। 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' तथा 'सत्यार्थप्रकाश' में विरोध होगा, यदि वृक्षों में जीव माना जाएगा। आपने उस विरोध का कुछ परिहार नहीं किया, श्री कणाद महर्षि के प्रमाण का आपने कुछ समाधान नहीं किया। जागरण-दशा में अवश्यमेव सुख या दुःख का अनुभव हो, इस बात का नियम नहीं है, क्योंकि जब चित्त सर्वात्मना किसी वस्तु में आसक्त होता है तो उस समय सुख या दुःख कुछ नहीं होता एवं अत्यन्त चंचलता में भी कुछ ज्ञान नहीं होता, 'परसंवेद्य' के स्वसंवेद्य होने में भी तो कोई प्रमाण चाहिए? वृक्षों को सुख या दुःख होता है, इस विषय में क्या प्रमाण है? अतः वृक्षों के मूर्च्छितावस्था में मानने से अन्तःसंज्ञता या सुख-दुःख समन्वितत्व का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता और इन सबके अभाव में वृक्ष सजीव हैं यह भी नहीं कह सकते। अतः वृक्षों में 'अभिमानी जीव' का मानना भ्रान्तिमात्र है तथा ईश्वर मनोरूप इन्द्रिय से जाना जाता है। गुण से गुणी का अनुमान किया जाता है, क्रिया से क्रियावान् का अनुमान किया जाता है अतः सृष्टि के निरीक्षण से जो परमात्मा का अनुमान किया जाता है, वह मन से ही तो किया जाता है? अतः ईश्वरादि परसंवेद्य नहीं हैं। संसार में धोखा इसीलिए होता है कि मनुष्य परसंवेद्य को नहीं जान सकता, यदि परसंवेद्य, स्वसंवेद्य हो जाया करे तो कभी कोई धोखा न खा सके। अतः वृक्षों को ज्ञान होता है, यह बात तब तक नहीं मानी जा सकती, जब तक कहीं

व्याप्तिग्रह न हो। बस वेद, स्मृति और युक्ति से किसी प्रकार भी वृक्षों में अभिमानी जीव का होना सिद्ध नहीं हो सकता।

[स्वामी जी के भाषण के अनन्तर ही एक ओर से झटपट यह शब्द सुनाई दिये कि अब 'शास्त्रार्थ' बन्द हो जाना चाहिए, बहुत सी खलकत कांगड़ी से यहाँ लौटकर आई है और स्वामी जी के व्याख्यान को सुनने के लिए समुत्कंठित है, बहुत 'हाँ हाँ, ना ना'' के कोलाहल के पश्चात् यह निश्चित हुआ कि अबकी बार पण्डित गणपति शर्मा जी बोल लें, उसके पश्चात् (चूंकि भाषण का अन्त्यावसर स्वामी जी का था।) यदि स्वामी जी चाहें तो उत्तर देकर अपना व्याख्यान आरम्भ कर दें। परन्तु स्वामी जी ने पण्डित जी के पश्चात् व्याख्यान ही दिया। यह इसलिए नहीं कि उत्तर नहीं दे सकते थे, प्रत्युत् इसलिए कि व्याख्यान सुनने के लिए लोग बहुत उन्मनस्क हो रहे थे, शास्त्रार्थ को भावी वर्ष पर बड़े समारोह से करने के लिए मुलतवी किया। परन्तु शोक कि श्री पण्डित जी दागे-मुफारकत दे गए। नहीं तो आगामी वर्ष श्री पण्डित आर्यमुनि जी आदि के साथ भी उनके शास्त्रार्थ होते, जो कि बड़े मार के होते। परन्तु शोक कि अब वह तर्कचूड़ामणि व्याख्यानवाचस्पति स्वर्ग में बुध और बृहस्पति की प्रतिभा-परीक्षा के लिए इस अवध मानवलोक को छोड़कर सिधार गए।-पं. पद्मसिंह शर्मा]

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी का स्वपक्षोपसंहार- मेरी ओर से दो मन्त्र अथर्ववेद के, छान्दोग्योपनिषद् (शांकर भाष्य) मनुस्मृति महाभाष्य तथा ब्राह्मण प्रामाण्योपजीवक श्री नागेश रचित परिभाषेन्दु शेखर के प्रमाण वृक्षों में 'अभिमानी जीव' के प्रतिपादक पेश किये गए एवं सत्यार्थप्रकाश तथा मल्लिनाथ आदि के प्रमाण भी दिए गए, जो सब-के-सब वेदानुकूल होने के कारण उपादेय हैं। वेदमन्त्रों के अर्थ जब तक कोई दोष नहीं बताया जाय, तब तक वह हेय नहीं हो सकता, सत्यार्थप्रकाश के साथ जो ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का विरोधाभास दिखाया गया, उसका भी निराकरण कर दिया, प्रमाण सम्बन्धी जो अन्यान्यप्रकरण प्रवाहपतित काकभाषा आक्षेप हुए, उन सबका संक्षेप-विक्षेपपूर्वक यथार्थ परिक्षेप किया गया। परिभाषेन्दु शेखर काकभाषा में नहीं है- हाँ, यदि उसमें नवीन न्याय की फक्किकाँओं का समावेश किया जाय तो बेशक काकभाषा हो जाती है। वस्तुतः यह ग्रन्थ महाभाष्यान्तः प्रतिपादित परिभाषाओं का एक गुटका है जो नागेशभट्ट महामुनि पतंजलि महाराज की उक्ति के बिना एक शब्द भी प्रमाण नहीं मानते, उनके ग्रन्थ को काकभाषा कहना सज्जनजनविगर्हित है। फिर आप नियमानुसार जब तक उनकी उक्ति का खण्डन नहीं करते, केवल काकभाषा कहकर टालने से विद्वत्तोष नहीं कर सकते। प्राणी-अप्राणी शब्द निर्णय व्याकरण से ही होगा- 'जीव धातु' प्राणन् रूप अर्थ में आता है, इससे यह बात स्पष्ट है कि 'प्राण' तथा 'जीव' पयार्यवाची शब्द है, तो वेदों में, वृक्षों में, प्राण का कहना जीवन की संज्ञा का निर्णायक होगा,- इत्यादि सब युक्तिपूर्वक कहा जा चुका है- 'वृक्ष' शब्द का अर्थ'

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलञ्च संध्या, वेदाः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम् तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं, छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्।।

इस (वृद्धचाणक्य) के अनुसार सर्वत्र गौण नहीं किया जा सकता। नहीं तो ''द्वा सुपर्णा'' में आपका रूपकालंकार न बन सकेगा। अतः प्रकरण आदि की व्यवस्था से- लोक, व्याकरण, कोश आदि सब प्रमाण मानना पड़ेगा। मूर्च्छा में यदि सुख-दुःख का अभाव होगा तो आत्मा पाषाणवत् (जड़) हो जाएगा।

[अन्त में, इस प्रकार व्याख्यान के पश्चात् हाथ जोड़कर बड़े आदरभाव से स्वामी जी महाराज की स्तुति तथा सभी का धन्यवाद कर श्री पण्डित जी मौन हुए, ''**और ऐसे मौन हुए कि अब ऐसे शास्त्रार्थ और व्याख्यान स्वप्न हो गये।** इसके पश्चात् श्री स्वामी दर्शनानन्द जी का व्याख्यान प्रारम्भ हुआ, उसके आदि शब्द थे कि ''**आर्य लोगों का शास्त्रों को न समझना यह साबित करता है कि आर्य लोग स्वाध्याय नहीं करते.....**'' इत्यादि, यह एक सारस्वत महानद था कि अनेक युक्ति प्रमाणाख्यानों की तरंगों से समृद्ध वेग बह रहा था। डेढ़ घण्टा तक व्याख्यान देकर स्वामी जी रात्रि को ११ बजे की गाड़ी में रावलपिण्डी को चले गये, क्योंकि उनको गुरुकुल पोठोहार के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होना था।-लेखक] **- पं. रलाराम**

शङ्का समाधान - २७

डॉ. वेदपाल, मेरठ

शङ्का- सत्यार्थप्रकाश पञ्चम समुल्लास 'वानप्रस्थ विषय' में स्वामी जी ने मनु. ६-८, २६ को उद्धृत करते हुए लिखा है कि-...किसी से कुछ भी पदार्थ न लेवे,...भूमि में सोवे,...वृक्ष के मूल में बसे। अध्ययन के पश्चात् शङ्का के निम्न बिन्दु उत्पन्न होते हैं-

१. अधिकतर वानप्रस्थी पीताम्बर धारण करते हैं। वानप्रस्थ में पहचान के लिए वस्त्रों का कोई विशेष रंग होना चाहिए या नहीं?

२. धरा शयः- क्या भूमि में बिना वस्त्र बिछाए सोना होता है। भूमि पर सोने में सर्प-बिच्छू-कीड़े-मकोड़े आदि जीव-जन्तु का भय बना रहता है, तो क्या काष्ठ आदि के पलंग/तख्त आदि पर सोने का विकल्प है या नहीं?

३. वृक्ष मूले निकेतन- इसका अर्थ वेदाभ्यास तथा प्रणव का ध्यान है अथवा वृक्ष की जड़ खोदकर उसमें बसना है?

४. क्या रात्रि में वृक्ष के नीचे शयन करना उचित है?

५. किसी से कुछ भी पदार्थ न लेने पर पञ्च महायज्ञों के पालन में कठिनाई होगी। गोघृत और हवन सामग्री के बिना देवयज्ञ कैसे हो सकेगा?

६. क्या वानप्रस्थ में जीवन-निर्वाह के लिए पहले ही कुछ धन जोड़कर रखना चाहिए, ताकि गृहस्थाश्रम के पश्चात् कोई असुविधा न हो?

७. यदि किसी के माता-पिता वृद्ध एवं अस्वस्थ हों तो उनके वानप्रस्थी पुत्र को क्या करना चाहिए?

८. पचास वर्ष की आयु के पश्चात् वन में प्रस्थान करने पर उक्त वानप्रस्थी की सन्तान को 'पितृतर्पण' करने का अवसर कब और कैसे मिलेगा?

९. जंगल में मच्छरों से बचाव का क्या उपाय है?

-इन्द्रसिंह, भिवानी (हरियाणा)

समाधान- आपकी शङ्काओं को संक्षिप्त कर उद्धृत किया गया है। शङ्काएं/प्रश्न संक्षिप्त होने चाहिएं। वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवनचर्या का व्यवस्थित निर्देश धर्मसूत्र तथा स्मृति ग्रन्थों में सविस्तार प्रतिपादित है। यह ध्यान रखना चाहिए कि **धर्मसूत्र एवं स्मृति ग्रन्थ वेद नहीं हैं, अपितु व्यक्ति के जीवन (व्यक्तिगत एवं सामाजिक) को युगानुरूप व्यवस्थित ढंग से जीने की कला के प्रतिपादक ग्रन्थ हैं। अर्थात् इन ग्रन्थों के निर्देश युग सापेक्ष-तत्कालीन समय और समाज को दृष्टिगत रखकर दिए गए हैं। वेदोपदेश के समान शाश्वत न होकर युगानुरूप परिवर्तन सह हैं।** अपनी शङ्काओं के समाधान पढ़ते समय इसे ध्यान में रखना समाधान में सहायक रहेगा। अस्तु

१. वानप्रस्थ के लिए वन/अरण्य से प्राप्त वल्कल-वृक्ष की छाल आदि या दर्भ से निर्मित अथवा मृगचर्म आच्छादन रूप में वर्णित हैं। तद्यथा-

क- तस्याऽऽरण्यमाच्छादनं विहितम्- आप. ध. सू. २.२२.१

ख- चर्मचीरवासाः स्यात्- विष्णु ध. सू. ९४.८

ग- जटिलश्चीराजिनवासाः- गौ. ध. सू. १.३.३३

घ- वानप्रस्थो जटिलश्चीराजिनवासी-

वसिष्ठ ध. सू. ९.१

वानप्रस्थ होने का प्रयोजन स्वयं को संन्यास तथा मोक्ष-प्राप्ति के लिए तैयार करना है। अतः सम्पूर्ण ऐहिक सुख-सुविधा छोड़कर गृहस्थ के झमेलों से दूर एकान्त में रहकर तपःपूर्ण जीवन व्यतीत करना है-

'वानप्रस्थस्तपसा शरीरं शोषयेत्' विष्णु ध. सू. ९५.१

प्राचीनकाल में वनों का बाहुल्य होने से एकान्त सेवन-आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से उन्हें उपयुक्त समझा गया होगा। विविध प्रकार के फल एवं कन्द आदि भोज्य पदार्थ तब अनायास सुलभ रहे होंगे, किन्तु जब सूत्रकार वानप्रस्थ के लिए, जुती हुई कृषिभूमि से उत्पन्न पदार्थ न लेकर- **'अकृष्टं मूलफलं सञ्चिन्वीत'**-(वसिष्ठ ध. सू. ९.४) केवल वृक्षों से प्राप्त कन्द-फल आदि अथवा अकृष्ट भूमि (जिसमें खेती न की जाती हो ऐसी परती-बंजर भूमि) से उत्पन्न सांवा (श्यामाक) आदि से जीवन-निर्वाह का निर्देश करते हैं। अथवा **'सिलोञ्छेन वर्तयेत्'**-(आप ध. सू. २.२२.१०) कृषि-कर्म से उत्पन्न गेहूँ, जौ आदि अन्न के कृषक द्वारा खेत से उठाकर घर ले जाने के पश्चात् खेत में कृषक से छूटी गेहूँ, जौ आदि की बालियों से प्राप्त अन्न द्वारा निर्वाह का निर्देश करते हैं। तब वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सूत्रकार द्वारा निर्दिष्ट दोनों साधनों से जीवन

निर्वाह यदि असम्भव नहीं, तब भी अत्यन्त कठिन तो है ही।

जिस वन प्रदेश में सामान्यत: संसारी जनों का आवागमन नहीं होता हो, उस प्रदेश में वानप्रस्थ वल्कल धारण करे अथवा दर्भ आदि से निर्मित लंगोटी आदि लगाकर रहे-यह संभव था। आज के युग की दृष्टि से वह स्थान तथा जीवन-निर्वाह का साधन भोजन ही सुलभ नहीं है। तब वह वानप्रस्थ जहाँ भी रहेगा, वहाँ आवागमन रहेगा ही। अत: **सामाजिक दृष्टि से वस्त्र- धारण तो करना ही होगा। उस वस्त्र का रंग किस प्रकार का हो, यह शास्त्रनिर्दिष्ट तो नहीं है, (जब शास्त्र ने वस्त्र- धारण का ही विधान नहीं किया, तब वस्त्र के रंग-विधान का प्रसंग ही नहीं था।) किन्तु वह सत्त्वगुण प्रधान होने पर ही साधना में सहायक होना सम्भव है।**

२. शास्त्र या किसी भी विषय के साथ कठिनाई तब होती है, जब उसके तात्पर्य को छोड़कर केवल उसके अभिधेय-अभिधावृत्ति से गृहीत अर्थ को पकड़कर बैठ जाते हैं। आपकी शङ्का- '**धराशय:**' भी इसी प्रकार की है। यहाँ '**धराशय**' का अभिप्राय-भौतिक सुख-सुविधाओं से दूर रहना है। शय्या-पलंग पर बिछौना आदि तप के साधक नहीं हैं। इसीलिए कहा है- '**अनुपस्तीर्णे शय्यासने**'- (आप. ध. सू. २.२२.२३) वैसे भी जो वृक्ष के नीचे या खुले आकाश के नीचे रह रहा है, वह पलंग कहाँ बिछावेगा?

दंश-मशक आदि (यहाँ आदि पद से सर्प-बिच्छू आदि सभी वन्य जीव ग्रहण करने चाहिएं।) के सन्दर्भ में **बौधायन** का कथन है- '**न द्वुह्येद् दंशमशकान्...**' बौ. ध. सू. ३.३.१९। **बौधायन** के इस वचन के साथ पतञ्जलि का निम्न सूत्र- '**अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग:**'- यो. द. साधनपाद, सूत्र -३५ भी स्मरण रखना चाहिए।

३. '**वृक्षमूलनिकेतन:**' का अर्थ वृक्ष की जड़ खोदकर अर्थात् वृक्ष/जड़ के नीचे गड्ढा बनाकर रहना नहीं है। सूत्रकार वानप्रस्थ द्वारा अग्नि के लिए आश्रय का विधान तो करते हैं, किन्तु उसके लिए खुले आकाश में रहने का निर्देश करते हैं, अर्थात् कुटी/भवन/आश्रम बनाकर रहने का नहीं। तद्यथा-

क- 'अग्न्यर्थं शरणम्। आकाशे स्वयम्'-
आप. ध. सू. २.२२.२१-२२

ख- 'वृक्षमूलनिकेतन ऊर्ध्वं षड्भ्यो मासेभ्योनग्निरनिकेत:'- वसिष्ठ ध. सू. ९.११

सूत्रकार वानप्रस्थ के लिए तप द्वारा शरीर का शोषण, सर्वविध सुख-सुविधाओं का त्याग, ग्रीष्म में अग्नि में तपना (विष्णु धर्मसूत्र के टीकाकार केशव तो आधुनिक साधुओं के पञ्चाग्नि तप के समान- '**ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थ:**' कहते हैं।) तथा वर्षा (श्रावण से कार्त्तिक तक चार मास) एवं हेमन्त (मार्गशीर्ष से फाल्गुन तक चार मास) में आर्द्रवस्त्रधर रहने की बात करते हैं। तद्यथा- ''**वानप्रस्थस्तपसा शरीरं शोषयेत् ग्रीष्मे पञ्चतपा: स्यात्। आकाशशायी प्रावृषि। आर्द्रवासा हेमन्ते**''- विष्णु ध. सू. ९५.१-४

अत: '**वृक्षमूलनिकेतन:**' का अभिप्राय आवास बनाकर रहने के निषेध का द्योतक है। वह आवास कुटी हो, भवन हो अथवा गुफा। प्रणव-जप तो वानप्रस्थ का महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य कर्म है ही।

४. नहीं, क्योंकि वानस्पतिक दृष्टि से सभी वृक्ष श्वसन क्रिया के समय कार्बनडॉई ऑक्साइड छोड़ते हैं, किन्तु दिन में प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया के कारण ऑक्सीजन की मात्रा रात्रि की अपेक्षा लगभग दस गुना बढ़ जाती है (क्योंकि सूर्य के प्रकाश में पौधे-वृक्ष-वनस्पति पानी के साथ कार्बनडाई ऑक्साइड को कार्बोहाइड्रेट/ग्लुकोज में परिवर्तित कर देते हैं। इस कारण दिन में कार्बनडाईऑक्साइड की मात्रा न्यून तथा ऑक्सीजन की मात्रा अधिक रहती है। रात्रि में प्रकाशसंश्लेषण न होने के कारण कार्बनडाईऑक्साइड की मात्रा अधिक रहती है।) इस कारण दिन में वृक्ष की छाया में ऑक्सीजन अधिक होने से हानि नहीं होती, किन्तु रात्रि में ऐसा नहीं है।

व्यावहारिक दृष्टि से भी पक्षी रात्रि में वृक्षों पर निवास करते हैं। इस समय में वे मलविसर्जन भी स्वाभाविक रूप से करते ही हैं। नीचे शयन करने वाले पर मल गिरना स्वाभाविक है। कई बार सर्प आदि विषैले प्राणी पक्षियों के घोंसलें पर भोजन की तलाश में आते हैं और उनका वृक्ष से नीचे गिर जाना भी सम्भव है। इस स्थिति में नीचे शयन करने वाले को हानि सम्भव है। अत: रात्रि में वृक्ष की अपेक्षा खुले आकाश के नीचे शयन करना अच्छा है।

५. आपकी चिन्ता किसी से पदार्थ ग्रहण न करने पर वानप्रस्थ द्वारा पञ्चमहायज्ञ सम्पादन की कठिनाई को लेकर है। वानप्रस्थ के लिए विकल्प है कि वह अरण्य से ही **१. कपोतवृत्ति- केवल उसी दिन का भक्ष्य, २. एक मास का भक्ष्य, ३. एक वर्ष के लिए भक्ष्य पदार्थ संग्रह कर**

सकता है। यदि वह एक वर्ष का संग्रह रखता है, तब उसे आश्वयुजी पूर्णिमा/ आश्विन मास की पूर्णिमा को पूर्व संग्रह को त्याग देना चाहिए। तद्यथा-

क. 'कपोतवृत्तिर्मासनिचयः संवत्सरनिचयो वा। संवत्सरनिचयी पूर्वनिचिताम् आश्वयुज्यां जह्यात्'-

विष्णु ध. सू. ९४.११-१२

ख. 'नातिसंवत्सरं भुञ्जीत'- गौ. ध. सू. १.३.३४

अतः वानप्रस्थ आपके अभिलषित अग्निहोत्र (जिसमें घृत-सामग्री अपेक्षित है) को छोड़कर शेष यज्ञ सम्पन्न करने में समर्थ है। अग्निहोत्र के सन्दर्भ में स्मरण रखना चाहिए कि आरण्यक मानस अग्निहोत्र (यह पृथक् लेख का विषय है) का विधान करते हैं। वानप्रस्थ उसे सुगमतापूर्वक सम्पन्न कर सकता है।

६. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह प्रश्न विचारणीय है, क्योंकि न तो इस प्रकार के वनप्रदेश हैं, जहाँ बिना पैसे के फल आदि की प्राप्ति हो सके और न ही ऐसी अकृष्ट भूमि, जहाँ से उत्पन्न सांवा आदि प्राप्त हो सकें, साथ ही इस प्रकार के वानप्रस्थ आश्रम भी नहीं हैं, जहाँ धनहीन तपस्वी को भोजन आदि सुलभ हो सकें।

स्यात् वर्तमान परिस्थितियों का पूर्वाभास कर ही आपस्तम्ब ने वानप्रस्थ के लिए वैकल्पिक व्यवस्था भी दी है कि- वानप्रस्थ ग्राम से बाहर घर बनाकर अग्नियों को प्रज्वलित कर पत्नी-सन्तान के साथ रह सकता है। अथवा अकेला भी ग्राम के बाहर रह सकता है। तद्यथा-

क- 'गृहान् कृत्वा सदारस्सप्रजस्सहाग्निभिर्बहिर्ग्रामाद्वसेत् एको वा'- आप. ध. सू. २.२२. ८-९

किन्तु इस पक्ष में स्मरण रखना चाहिए कि-एक साधारण अग्निवाला नियम यहाँ नहीं लगेगा, अपितु उसे पूर्ववत् श्रौत अग्नियों को स्थापित रखना होगा।

७. जो व्यक्ति पुत्र के पुत्र अर्थात् पौत्र होने पर वानप्रस्थ हुआ है, उसके पिता भी तो वानप्रस्थ हो चुके होंगे। पुनरपि यदि वह अस्वस्थ हैं, तब उसका दायित्व है कि उनकी सेवा शुश्रूषा करे। यदि उसका पुत्र (अस्वस्थ वृद्ध का पौत्र) सम्यक् प्रकार से सेवा कर रहा हो और वह तथा उसके माता-पिता सन्तुष्ट हों, तब वह साधना करे, यह सम्भव है। अन्यथा प्रथम दायित्व माता-पिता की सेवा है।

८. पचास वर्ष की आयु कोई निश्चित नियम नहीं है, अपितु पुत्र के पुत्र होना तथा शरीर की शिथिलता, इन दोनों के साथ आत्मकामता भी अपेक्षित है। तद्यथा-

'गृही वलीपलितदर्शने वनाश्रयो भवेत्।

अपत्यस्य चापत्यदर्शने वा'- विष्णु ध. सू. ९४.१-२

तर्पण के विषय में महर्षि दयानन्द का अभिमत है- **''जो पिता...वृद्ध हों उन सबको अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर यान आदि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना अर्थात् जिस-जिस कर्म से उनका आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे, उस-उस कर्म से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करनी, वह श्राद्ध और तर्पण कहाता है।''**- सत्यार्थ प्रकाश समु. ४, पृ. ७१ तथा पञ्चमहायज्ञविधि भी द्रष्टव्य है। शेष उत्तर क्रमाङ्क -७ में है।

९. जिस व्यक्ति के मन में मच्छर से बचाव तक की चिन्ता है, उसे वानप्रस्थ का विचार भी सम्भव नहीं है। पुनरपि यदि किसी का भाव प्रदर्शनप्रियता है, तब मच्छर से बचाव के साधन भी सुलभ हैं, वह उनका प्रयोग कर सकता है।

वस्तुतः मनीषियों ने व्यक्तिगत कल्याण की कामना तथा अनेक सामाजिक समस्याओं के समाधानार्थ (आज की बड़ी पारिवारिक व सामाजिक समस्या है-घर में वृद्धों का उपेक्षित ही नहीं, अपितु पदे-पदे तिरस्कृत होना। समाज में वृद्धाश्रमों की बढ़ती संख्या इसका प्रबल प्रमाण है। यदि व्यक्ति स्वेच्छा से तिरस्कृत होने से पूर्व ही गृह त्याग दे, तब न तो उसके मन में सन्तान के प्रति कटुता होगी और न ही ऐसी सन्तान को जन्म देने की आत्मग्लानि। इसी प्रकार की अनेक समस्याओं के उत्पन्न होने की सम्भावना को क्षीण करने का साधन वानप्रस्थ है।) जीवन को चार आश्रमों में विभक्त किया है।

जो व्यक्ति एक अग्नि (बौधायन ने उसे वैखानस अग्नि तथा वसिष्ठ ने श्रामणक अग्नि कहा है, किन्तु ध्यातव्य है कि वानप्रस्थ गृह्याग्नि प्रज्वलित नहीं रखता है।) प्रज्वलित कर स्वयं अशरण, मौनधारण (उच्चारण ध्वनि इतनी धीमी हो कि पक्षियों को भी असुविधा न हो।) कर स्वाध्याय- (स्वाध्यायं च न जह्यात्-विष्णु ध. सू. ९४.६) आत्म चिन्तन में रत रहना चाहता है, वही वानप्रस्थ का अधिकारी है।

वैदिक पुस्तकालय अजमेर
द्वारा प्रकाशित नये संस्करण

ईश्वर (वैज्ञानिकों की दृष्टि में), प्रस्तुतकर्ता एवं अनुवादक - पं. क्षितीश कुमार वेदालङ्कार

मूल्य -१५० रु., **पृष्ठ** - २६४

दुनिया में दो तरह के मनुष्य पाये जाते हैं, एक वो जो भगवान् को अर्थात् उसके अस्तित्व को स्वीकार करते हैं और दूसरे वे जो भगवान् जैसी किसी सत्ता पर भरोसा नहीं करते। पहले को आस्तिक और दूसरे को नास्तिक कहा जाता है। नास्तिकों के अपने तर्क हैं और इन तर्कों में वे प्राय: वैज्ञानिक प्रयोगों, आविष्कारों, विज्ञान की प्रगति की दलीलों का ही हवाला देते हैं। विज्ञान है तो बहुत अच्छी चीज़, पर अगर कहीं किसी वैज्ञानिक की चूक से कुछ गलत निष्कर्ष आ जाये तो उसे आंखें बन्द करके मान लिया जाता है। आखिर वैज्ञानिक भी तो मनुष्य ही है, गलती तो वह भी करता ही है। इस तरह एक नये प्रकार का अन्धविश्वास 'वैज्ञानिक अन्धविश्वास' जन्म लेता है और दो अन्धविश्वास आपस में टकरा जाते हैं। जो भगवान् को नहीं मानता, वह भी सोचना नहीं चाहता, केवल दूसरों के भरोसे चलता है और जो मानता है, उसने भी अपना दिमाग बाबाओं के पल्ले बाँध रखा है। इन दोनों से अलग कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपने मस्तिष्क को थोड़ा मेहनत करने देते हैं और सत्य तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। ऐसे ही कुछ वैज्ञानिकों के विचारों को इस पुस्तक में संकलित किया गया है। जरूरी नहीं कि ये सभी वैज्ञानिक भगवान् को स्वीकार करते ही हों, पर वह इतना तो स्वीकार करते ही हैं कि कुछ तो है जो विज्ञान की पकड़ से बाहर है। उनकी इसी 'ना' में शायद 'हाँ' छिपी है, बस अन्तर इतना ही है कि उनकी वह खोज बिना नाम वाली है और वेद ने उसको नाम दे दिया है- 'ईश्वर'।

त्रैतवाद- लेखक-विद्यामार्तण्ड पंडित बुद्धदेव विद्यालङ्कार

मूल्य-२० रु., **पृष्ठ** -४०

परिचय- पं. बुद्धदेव जी एक बार अपने आर्य मित्र के पास मिलने गये। उन्होंने देखा कि मित्र का बड़ा बेटा कम्युनिस्ट विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित है। कारण यह कि वह देश-विदेश में घूमकर आया है और किताबें भी कम्युनिज़्म की ही पढ़ता है। पंडित जी ने वह पुस्तक मांगी, जिससे कम्युनिज़म का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। उस पुस्तक का नाम था The Origin of life on the Earth, जिसका विषय था, 'पृथ्वी पर पहली बार जीवन कैसे आया?' बुद्धदेव जी ने इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़कर इसकी समीक्षा की और उस समीक्षा की एक पुस्तक बन गई- त्रैतवाद।

आख्यातिक- लेखक- महर्षि दयानन्द सरस्वती

मूल्य- २५० रु. , **पृष्ठ** - ६०८

परिचय- महर्षि दयानन्द सरस्वती आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन पर बहुत बल देते थे। विशेषकर व्याकरण पर, जो कि सब शास्त्रों की कुंजी है। संस्कृत व्याकरण को सरल एवं सुगम बनाने के लिये उन्होंने पाणिनीय व्याकरण के सहायक ग्रन्थों के रूप में 'वेदांग प्रकाश' नाम से १४ पुस्तकें लिखीं। उनमें से आठवाँ भाग यह 'आख्यातिक' है। इसमें मूलत: धातु पाठ की व्याख्या है। साथ ही उन धातुओं के रूप निर्माण की प्रक्रिया को भी समझाया गया है।

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

संस्था-समाचार

आर्यवीर दल प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न-बुधवार २३ मई सायं छः बजे परोपकारिणी सभा के सभासद् डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी ने ध्वजारोहण करके चरित्र निर्माण एवं व्यायाम प्रशिक्षण के सम्भाग स्तरीय आठ दिवसीय विशाल शिविर का उद्घाटन किया। सभा मंत्री श्री ओममुनि, डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी, श्री दीपक हासानी, आर्यवीर दल के शिविर संचालक श्री वासुदेव, आचार्य सत्येन्द्र आर्य एवं कवि डॉ. नन्दकिशोर काबरा ने आर्यवीरों को संबोधित किया। शिविर में व्यायाम शिक्षक श्री प्रणव प्रजापति, श्री मानसिंह, श्री सुशील शर्मा, श्री अभिषेक कुमावत, श्री नीरज चौधरी, श्री रक्षित आर्य, श्री अंशु आर्य, श्री सनी आर्य एवं उप व्यायाम शिक्षक श्री सुनील आर्य ने आसन, व्यायाम, जूडो-कराटे, लाठी चलाना आदि सिखाया। श्री वासुदेव आर्य और ब्र. उत्तम ने प्रतिदिन यज्ञ एवं संध्या कराए। बौद्धिक कक्षाओं में डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी ने यज्ञोपवीत का महत्त्व, सोलह संस्कार एवं बहुमुखी विकास की चर्चा करते हुए आर्यवीरों का मार्गदर्शन किया। आचार्य सत्येन्द्र ने यम, नियम का पालन तथा लोक व्यवहार के बारे में बताया। राजस्थान प्रान्त के प्रान्तीय संचालक श्री देवेन्द्र शास्त्री ने शिविरार्थियों को आर्यवीर दल की विशेषता और महत्त्व समझाया। बाल अधिकार संरक्षण आयोग के उपनिदेशक श्री ब्रह्मप्रकाश आर्य ने आर्यवीरों को नागरिक अधिकारों और कर्त्तव्यों के बारे में बताया। शिविर में हैदराबाद, दिल्ली, बरेली, चित्तौड़, भीलवाड़ा, अराई, विजयनगर, गुलाबपुरा, रेनवाल, पृथ्वीराज खेड़ा, नागौर, पिलवा, रायला आदि स्थानों से १६० बालकों एवं युवाओं ने बहुत उत्साहपूर्वक भाग लिया। सबसे छोटे आर्यवीर १० वर्ष के रहे। रविवार २७ मई को प्रातः नौ बजे श्री विश्वास पारीक के निर्देशन में आर्यवीरों ने नगर में जुलूस निकालकर शराब आदि नशा एवं भ्रष्टाचार के प्रति लोगों को जागरूक किया। इस जुलूस में श्री वासुदेव आर्य, श्री अभिषेक कुमावत, श्री नीरज चौधरी, श्री कमलेश पुरोहित, श्री सुनील जोशी और श्री मानसिंह जी का विशेष सहयोग रहा। मंगलवार २९ मई को सम्भागीय रक्त-कोष जवाहर लाल नेहरू चिकित्सालय अजमेर एवं मानव अधिकार संगठन के सहयोग से परोपकारिणी सभा और आर्यवीर दल द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती भवन में रक्तदान शिविर लगाया गया। आर्यवीरों, गुरुकुल के ब्रह्मचारियों एवं नगरवासियों सहित २४ लोगों ने रक्तदान किया। सभा मन्त्री श्री ओममुनि प्रतिदिन शिविर का निरीक्षण करते रहे। समापन अवसर पर जिला परिषद् अजमेर के सी.ई.ओ. श्रीमान् अरुण गर्ग मुख्य अतिथि रहे, उन्होंने सभी विजेता आर्यवीरों को पुरस्कृत किया तथा अपनी शुभकामनायें और आशीर्वाद प्रदान किया। सभा मन्त्री श्री ओममुनि, सभासद् डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी, आचार्य सत्येन्द्र, कोषाध्यक्ष श्री सुभाष नवाल, आर्यवीर दल के जिला अधिष्ठाता श्री मुत्युंजय शर्मा, श्री संजय सेठी, लाडनूँ निवासी श्री अशोक भास्कर, गुरुकुल के सभी आचार्य एवं ब्रह्मचारीगण, डॉ. किशोर काबरा, स्वामी सोमानन्द, स्वामी विकास गिरि, श्री मुमुक्षु मुनि, श्री रमेश मुनि, श्री लक्ष्मण मुनि, श्री वासुदेव आर्य, श्री बाबूलाल मंच पर विराजमान रहे। शिविर की सभी प्रकार की आवश्यकता-पूर्ति में अनेक लोगों ने धन एवं अन्य साधनों से सहायता की, उनमें श्री मनोज शारदा एवं उनके परिवार का मुख्य योगदान रहा, उन्होंने पचास हजार रुपये की राशि प्रदान की। सभी आर्यवीरों के लिये आवास, नाश्ता, भोजन, दूध आदि का सर्वोत्तम प्रबन्ध परोपकारिणी सभा द्वारा किया गया।

जन्मदिवस पर यज्ञ- ऋषि उद्यान की भव्य यज्ञशाला में १९ मई को श्री वासुदेव आर्य ने सुपुत्री सूर्यकिरण के जन्मदिन पर यज्ञ किया। २९ मई को परोपकारिणी सभा के सभासद् डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी का जन्मदिवस मनाया गया। परोपकारिणी सभा की ओर से सभी यजमानों को हार्दिक शुभकामनायें।

अतिथि- अजमेर नगर में केसरगंज स्थित ऐतिहासिक महर्षि दयानन्द आश्रम, वैदिक यन्त्रालय, अनुसन्धान भवन एवं वैदिक पुस्तकालय, ऋषि निर्वाण स्थल-भिनाय कोठी,

अन्त्येष्टि स्थल-मलूसर, ऋषि उद्यान स्थित महर्षि दयानन्द सरस्वती संग्रहालय, महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल आदि महत्त्वपूर्ण स्थानों को देखने, संन्यासियों-विद्वानों से मिलकर शंका-समाधान करने, उपदेश ग्रहण करने, व्याकरण-दर्शन आदि शास्त्रों का अध्ययन करने, दैनिक यज्ञ एवं प्रवचन से लाभ लेने, पुष्कर आदि पर्यटनस्थलों में भ्रमण एवं आर्यसमाज के प्रचार के लिए देश-विदेश के संन्यासी, वानप्रस्थी, विद्वान्, पुरोहित, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, आर्यवीर, आर्यवीरांगना, आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता, गृहस्थ स्त्री-पुरुष और बच्चे निरन्तर आते रहते हैं। सभी आगन्तुकों के निवास एवं नाश्ता, भोजन, दूध आदि की समुचित व्यवस्था ऋषि उद्यान में उपलब्ध रहती है। पिछले १५ दिनों में सांचोर, भिवानी, दिल्ली, फतूही, खेरली, गुड़गाँव, गहलोता, गोमाना, जयपुर, रेवाड़ी, भीलवाड़ा, पुष्कर, खानपुर, भुसावर, माउण्ट आबू, सहारनपुर, लाडनूं आदि स्थानों से ५१ और श्री दुर्गाप्रसाद के नेतृत्व में दयानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय आजमगढ़ उत्तरप्रदेश के छात्राओं का दल तथा श्री सुरेन्द्र कुमार टण्डन के नेतृत्व में आर्यसमाज दाल बाजार लुधियाना से ६५ स्त्री, पुरुष, बच्चे ऋषि उद्यान पधारे।

दैनिक प्रवचन-प्रात:कालीन सत्संग में स्वामी विष्वङ्ग परिव्राजक, डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी, श्री ओममुनि, आचार्य कर्मवीर एवं आचार्य सत्येन्द्र के व्याख्यान हुए। सोमवार से गुरुवार तक सायंकालीन सत्संग में आचार्य सत्येन्द्र ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पुस्तक का पाठ करवाया एवं व्याख्यान किया। शुक्रवार सायंकाल को स्वामी शंकरदेव ने योग पर व्याख्यान दिया। शनिवार सायंकालीन सत्संग में श्रीमती विजय शर्मा एवं ब्र. उत्तम ने भजन सुनाया, श्री देवमुनि ने व्याख्यान दिया। रविवार सायंकालीन प्रवचन में ब्र. ज्ञाननिष्ठ ने प्रवचन और ब्र. मनोज ने अपने विचार व्यक्त किये।

उन्नति का कारण सत्योपदेश

जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

(स. प्र. ३)

एक आहुति
अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गौशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

- मन्त्री

आर्यों के लिये शुभ सूचना

'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर' छपने के लिये तैयार

कुछ समय पूर्व 'परोपकारी' में सूचना प्रकाशित हुई थी कि पं. लेखराम आर्य मुसाफ़िर के साहित्य 'कुल्लियाते आर्य मुसाफ़िर' को परोपकारिणी सभा प्रकाशित करने जा रही है। इस सूचना को पढ़कर आर्यजगत् में उत्साह का संचार होना स्वाभाविक ही था, जिसके परिणामस्वरूप इस ग्रन्थ को छापने के लिये कई साहित्यप्रेमियों ने सभा को सहयोग भी किया, परन्तु पंडित लेखराम जैसे नाम पर यह सहयोग पर्याप्त मालूम नहीं हुआ। पंडित लेखराम वह नाम है जिसके वैदिक-ज्ञान के सामने विरोधी काँपते थे। ऐसे सिद्धान्तमर्मज्ञ ने अपनी संचित ज्ञान-राशि को लेखबद्ध किया और इस लेखबद्ध ज्ञानराशि को यति शिरोमणि स्वामी श्रद्धानन्द जी ने एकत्रित किया और एक ग्रन्थ निर्मित हुआ, जिसका नाम था 'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर'। यह ग्रन्थ दो भागों में प्रकाशित हुआ। वर्त्तमान में यह ग्रन्थ दुर्लभ हो गया था। परोपकारिणी सभा ने इसे पुनः प्रकाशित करने का निर्णय लेकर पं. लेखराम को पुनर्जीवित कर दिया है। हमने लेखराम का गुणगान ही सुना है, उनके जीवन को ही पढ़ा है, पर वह इस उच्च पदवी को कैसे पा गये- इसकी सच्ची खबर तो उनके लिखे पन्ने ही बता सकते हैं। इन पन्नों को किताब रूप में छापने के लिये जैसा उत्साह, जैसी उमंग दिखनी चाहिये थी, उसमें अभी न्यूनता ही नज़र आती है।

अब यह ग्रन्थ छपने के लिये प्रेस में भेजा जा रहा है। अच्छे कार्यों का सदैव प्रोत्साहन होना चाहिये, इस दृष्टि से इस पुस्तक में **११०००/-रु.** का सहयोग करने वालों के नाम प्रकाशित किये जायेंगे। **एक लाख रु.** से अधिक का सहयोग करने वालों का चित्र सहित आभार व्यक्त किया जायेगा।

आइये, महर्षि दयानन्द के मिशन के लिये अपना जीवन देने वाले आर्यपथिक पं. लेखराम को केवल शब्दों से याद न करके उन्हें पुनर्जीवित करने में भरपूर उत्साह से सहयोग करें।

ओम्मुनि
मन्त्री, परोपकारिणी सभा

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ निःशुल्क दी जाती हैं। डॉ. रमेश मुनि जी चिकित्सक के रूप में इस चिकित्सालय का कुशलतापूर्वक कार्यभार सम्भाल रहे हैं।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

आर्यजगत् के समाचार

१. प्रवेश प्रारम्भ- गुरु विरजानन्द गुरुकुल, इन्दौर में आर्ष पाठविधि से कक्षा ४ उत्तीर्ण बालकों के लिये प्रवेश प्रारम्भ हैं। जो अभिभावक वैदिक संस्कृति, वेद, यज्ञ, योग एवं संस्कारयुक्त शिक्षा दिलाना चाहते हैं, वे शीघ्र से शीघ्र सम्पर्क करें। प्रवेश हेतु स्थान सीमित हैं। **विशेषताएँ**- आर्ष पाठविधि, संस्कृत सम्भाषण एवं इंग्लिश स्पीकिंग, सस्वर वेदपाठ शिक्षा, कम्प्यूटर ज्ञान, योगाभ्यास एवं शारीरिक प्रशिक्षण।

सम्पर्क- ९९७७९६७७७७

२. वेद महोत्सव सम्पन्न- आर्यसमाज कुण्डा प्रतापगढ़, उ.प्र. वेद प्रचार महोत्सव का आयोजन दि. २ से ५ जून तक किया गया, जिसमें डॉ. ब्रह्मदत्त व श्रीमती मीरा शास्त्री कोलकाता ने प्रवचन दिये व पं. परमानन्द प्रेमी मऊ ने भजन प्रस्तुत किये।

३. प्रवेश प्रारम्भ- आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय होशंगाबाद, म.प्र. में कक्षा ६ व ७ में योग्य विद्यार्थियों हेतु प्रवेश प्रारम्भ हो चुके हैं। इच्छुकजन दि. १५ जून से १५ जुलाई २०१८ के बीच में आने वाले प्रत्येक रविवार में मौखिक व लिखित परीक्षा दिलवाकर छात्रों को प्रवेश करवा सकते हैं। **सम्पर्क सूत्र**- ०९९०७०५६७२६, ०९४२४४७१२८८

४. छात्रावास- गाँव से दो किलोमीटर दूर, २ एकड़ जमीन पर सम्पूर्ण सुविधाओं से सम्पन्न जे.आर. पब्लिक माध्यमिक विद्यालय एवं ऋषिकुलम् छात्रावास, गहलोता, दूदू, जयपुर, राज. में प्रारम्भ किया गया है। छात्रावास खुले वातावरण से परिपूर्ण और सुरक्षा की दृष्टि से चारदीवारी से सुरक्षित है। अपने बच्चों को गुरुकुलीय वातावरण देने के लिये ऋषिकुलम् छात्रावास में प्रवेश करवायें। विशेषताएँ- योग, प्राणायाम, आत्मरक्षा के लिऐ जूडो-कराटे, आसन, मल्लखम्भ, सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र की विद्याओं का ज्ञान कराना। **सम्पर्क**- ८४३२०१४२२३

५. शिविर सम्पन्न- आर्यवीर दल मुम्बई द्वारा आर्य प्रतिनिधि सभा मुम्बई के संरक्षण एवं माटुंगा बोर्डिंग के विशेष सहयोग से दि. २२ से २९ अप्रैल तक आदर्श जीवन निर्माण शिविर श्री हीरजी भोजराज एण्ड संस कच्छी विसा ओसवाल जैन छात्रावास माटुंगा मुम्बई में आयोजित किया गया। जिसमें लगभग १३५ बच्चों ने भाग लिया।

वैवाहिक

६. वर चाहिये- आर्य परिवार, संस्कारित, जन्म- ०२ अक्टू. १९८९, कद- ५ फुट ६ इंच., शिक्षा- बी.एस.सी., एम.बी.ए. जापानी एमएनसी में कार्यरत, युवती हेतु आर्यसमाजी परिवार का समकक्ष संस्कारित युवक चाहिए। **सम्पर्क- ०९९३०२१७३५९, ८१३०२५२०४६**

चुनाव समाचार

७. आर्यसमाज सुमेरपुर, जि. पाली, राज. के चुनाव में **संरक्षक**- श्री गणेशमल विश्वकर्मा, **प्रधान**- श्री अचलचन्द रावल, **मन्त्री**- श्री गुलाबसिंह राजपुरोहित, **कोषाध्यक्ष**- श्री नटवरलाल नागर को चुना गया।

८. आर्यसमाज एम.एस. रोड, मुरैना, म.प्र. के चुनाव में **प्रधान**- आचार्य घनश्याम, **मन्त्री**- श्री विजयेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, **कोषाध्यक्ष**- श्री बृजमोहन गुप्ता को चुना गया।

९. आर्यसमाज वैशाली नगर, आम्रपाली मार्ग, जयपुर, राज. के चुनाव में **प्रधान**- डॉ. मोतीलाल शर्मा, **मन्त्री**- श्री आशीष मिनोचा, **कोषाध्यक्ष**- श्री जे.एन. चोपड़ा को चुना गया।

१०. आर्यसमाज मगरा पूंजला, जोधपुर, राज. के चुनाव में **संरक्षक**- श्री जयसिंह भाटी, **प्रधान**- श्री सम्पतराज देवड़ा, **मन्त्री**- श्री प्रकाश सांखला, **कोषाध्यक्ष**- श्री हरीसिंह सांखला को चुना गया।

शोक समाचार

११. आयर्ससमाज चरखी दादरी के उपप्रधान **श्री हरिशचन्द्र लाम्बा** पिछले कुछ समय से अस्वस्थ चल रहे थे। उनका देहावसान ६८ वर्ष की आयु में दि. १६ मई २०१८ को हो गया। वे लगभग ३५ वर्षों से आर्यसमाज चरखी दादरी से जुड़े हुए थे। उन्होंने अपना अधिंकाश समय समाज-सेवा व आर्यसमाज के लिए अर्पित किया। उनका अन्तिम संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से हुआ।

१२. दक्षिणी हरियाणा के सुदृढ़ आर्यसमाज देवनगर के कर्णधार श्री महेन्द्रसिंह जी के पिता **श्री कृष्णलाल यादव** का ८० वर्ष की आयु में देहावसान हो गया। वह एकदम नीरोग, स्वस्थ व कुशल थे। मृत्यु से कुछ घण्टे पूर्व आप कई घण्टे तक श्री अनिल आर्य से ग्राम की, आर्यसमाज की उन्नति व हित की लम्बी चर्चा करते रहे। आपको मृत्यु का आभास हो चुका था। मृत्यु अतिनिकट है, यह सबको कहते रहते थे, परन्तु कोई विश्वास ही नहीं करता था। वह भाग-दौड़ करते ठीक-ठाक चल बसे। आपने देश व समाज को श्री महेन्द्रसिंह जैसा रत्न दिया। उनके निधन से समाज ने एक अनुभवी, परोपकारी मार्गदर्शक खो दिया।

१३. शाहपुरा, भीलवाड़ा, राज. निवासी आर्य उद्योगपति **श्री नन्दलाल बहेड़िया** का १३ मई २०१८ को देहावसान हो गया है। उनका अन्तिम संस्कार आर्यसमाज शाहपुरा द्वारा पूर्ण वैदिक रीति से किया गया।

१४. दि. २८ अप्रैल २०१८ को आर्यसमाज कटनी, म.प्र. के विद्वान् श्री रामप्रसाद मिश्र का आकस्मिक निधन हृदयाघात के कारण हो गया। उनका अन्तिम संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से आर्यसमाज कटनी के द्वारा किया गया। **परोपकारिणी सभा दिवंगतात्मा को हार्दिक श्रद्धाञ्जली अर्पित करती है।**